कृष्णकान्तका वसीयतनामा

लेखक—
स्वर्गीय बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी

अनुवादक—
श्रीकृष्ण हसरत

प्रकाशक—
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
१६५-१, हरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम बार] [मूल्य २।)

प्रकाशक—
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
१९५-२, हरिसन रोड,
कलकत्ता ।

मुद्रक—
रुलियाराम गुप्त
दि बंगाल प्रिंटिंग वर्क्स
१, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता ।

॥ श्रीः ॥

कृष्णकान्तका वसीयतनामा

—:**:—

प्रथम खण्ड

—:oo:—

पहला परिच्छेद

हरिद्रा ग्राममें एक घर बहुत बड़े जमींदारका था। उन जमींदार साहबका नाम कृष्णकान्त राय है। कृष्णकान्त राय बहुत बड़े धनी हैं; उनकी जमींदारीकी आय कोई २ लाख रुपये हैं। यह सम्पत्ति उनकी और उनके भाई रामकान्त रायकी पैदा की हुई है। दोनों भाइयोंने साथ ही धन कमाया था। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था; एकके मनमें दूसरेके प्रति यह सन्देह कभी नहीं हुआ कि एक दूसरेको ठग सकता है। समूची जमींदारी बड़े भाई कृष्णकान्तके नामसे खरीदी गई थी। सबकी रसोई एक थी। रामकान्त रायके पुत्र था—उसका नाम गोविन्दलाल था। पुत्र पैदा होनेके समय ही रामकान्तके मनमें यह सन्देह हुआ था कि दोनोंकी उपार्जित सम्पत्ति एकके नाम है, अतः पुत्रकी मङ्गल-कामनाके लिये लिखा-पढ़ी हो जाना अच्छा है। कारण, वे इस बातसे तो निश्चिन्त थे कि उनके

बड़े भाई कभी अन्याय कर नहीं सकते; फिर भी; कृष्णकान्तके परलोक-गमनके बाद उनके पुत्र क्या करेंगे, इसका क्या ठिकाना ? किन्तु लिखा-पढ़ीकी बात सहज ही कह न सके—आज कहूंगा-कल कहूंगा—यही करने लगे। एक बार जरूरत पड़नेपर वह अपने तालुका गये और अकस्मात् वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

यदि कृष्णकान्त यह चाहते कि भतीजेको वंचित कर उसकी सारी सम्पत्ति अकेले भोगें तो इसमें कोई अड़चन न थी। किन्तु कृष्णकान्तके मनमें ऐसी कोई बुरी अभिसन्धि न थी। उन्होंने गोविन्दलालको अपनी गृहस्थीमें अपने पुत्रोंकी तरह पालन करना शुरू किया तथा एक विलकर रामकान्त रायका प्राप्य आधा अंश गोविन्दलालके नाम लिख देनेके लिये तैयार थे।

कृष्णकान्त रायके दो लड़के और एक लड़की है। बड़े लड़केका नाम हरलाल, छोटेका विनोदलाल है, कन्याका नाम शैलवती है। कृष्णकान्तने इस तरह विल किया कि उनकी मृत्युके बाद गोविन्द-लालको आठ आना, हरलाल और विनोदलाल हरेकको तीन आना, गृहिणीको एक आना और एक आनेका भाग शैलवतीको उनकी सम्पत्तिसे मिले।

हरलाल बड़ा निरङ्कुश है। वह पितासे ढीठ मुंहफट था। बङ्गालियोंका विल प्रायः छिपा नहीं रहता। विलकी खबर हरलालको भी लग गई। हरलालने देख-सुनकर लाल आँखेंकर पितासे पूछा—"यह क्या हुआ ? गोविन्दलालको आधा भाग और हमलोगों-को तीन-तीन आना ?"

कृष्णकान्तने कहा—"न्यायका कार्य हुआ है; गोविन्दलालके पिताका आधा हिस्सा उसे मिल रहा है।"

हर०—गोविन्दलालके पिताका क्या हक है? हमारी पैतृक सम्पत्तिका हकदार वह कौन है? फिर, माता-बहनका प्रतिपालन हम करेंगे, उनका एक-एक आना हक कैसा? इसके बदले उनके भरण-पोषणकी बात लिख जाइये।

कृष्णकान्त कुछ रुष्ट होकर बोले—"बेटा, हरलाल! सम्पत्ति मेरी है; तुम्हारी नहीं। मेरी जिसे इच्छा होगी दे जाऊँगा।"

हर०—आपकी बुद्धि तो सठिया गई है। आपको अपनी मनमानी मैं करने न दूंगा।

कृष्णकान्त क्रोधसे लाल होकर बोले—"हरलाल! आज यदि तुम लड़के होते तो गुरुजीको बुलवाकर तुम्हारी बेंतसे खबर लिवाता।"

हर०—मैंने लड़कपनमें अपने गुरुकी दाढ़ी फूंक दी थी—अब उसी तरह इस बिलको जला दूंगा।

कृष्णकान्त इसपर कुछ न बोले। उन्होंने बिल निकालकर फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उसके बदले एक नया बिल उन्होंने लिखवाया। उसमें गोविन्दलालको ८ आना, विनोदलालको पांच आना, अपनी स्त्रीको एक आना, शैलवतीको एक आना और हरलालको भी केवल एक आना लिखा।

इसपर क्रुद्ध होकर हरलाल घर छोड़ कलकत्ता चले गये। वहाँसे उन्होंने पिताको एक पत्र लिखा, जिसका मर्म इस तरह है:—

"कलकत्तेके पण्डितोंने निर्णय किया है कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है। मैंने विचार किया है कि मैं भी एक विधवा-विवाह करूँगा। यदि आप उस बिलको बदलकर एक नया बिल करें, जिसमें मुझे आठ आना हिस्सा लिखा हो और तुरत उसकी रजिस्ट्री हो जाय तो यह विचार मैं बदल दूंगा। अन्यथा शीघ्र ही एक विधवासे शादी करूंगा।"

हरलालने मनमें सोचा था कि कृष्णकान्त इससे भयभीत होकर बिल बदलकर उनके नाम अधिक सम्पत्ति लिख देंगे। किन्तु कृष्णकान्तका उन्होंने जो उत्तर पाया, उससे वह भरोसा जाता रहा। कृष्णकान्तने लिखा :—

"तुम मेरे त्याज्य पुत्र हो। तुम्हारी जिससे इच्छा हो, शादी करो। मेरी जिसे इच्छा होगी, सम्पत्ति दूंगा। तुम्हारे विवाह कर लेनेपर मैं यह बिल बदलूंगा अवश्य, किन्तु उसमें सिवा तुम्हारी हानिके लाभ न होगा।"

इसके कुछ ही दिनों बाद हरलालने खबर भेजवा दी कि उन्होंने विधवा-विवाह कर लिया है। कृष्णकान्तने फिर बिल फाड़ डाला। नया बिल लिखा गया।

पड़ोसमें ब्रह्मानन्द घोष नामके एक गरीब भले आदमी रहते थे। कृष्णकान्तको बड़े भैया कहा करते थे। उन्हीं द्वारा कृपापूर्वक प्रति-पालित भी होते थे।

ब्रह्मानन्दकी हस्तलिपि बड़ी सुन्दर होती है। यह सब लिखा-पढ़ी उन्हींके द्वारा होती थी। कृष्णकान्तने उसी दिन ब्रह्मानन्दको

बुलाकर कहा—"खाना-पीना समाप्त कर यहाँ आना। नया बिल तैयार करना होगा।"

विनोदलाल वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा—"अब फिर बिल क्यों बदला जा रहा है ?"

कृष्णकान्तने जवाब दिया—"इस बार तुम्हारे बड़े भाईके नाम शून्य होगा।"

विनोद०—यह अच्छा न होगा। अपराधी वह हो सकते हैं, किन्तु उनके एक पुत्र है—वह शिशु निरपराध है। उसका क्या होगा ?

कृष्ण०—उसके नाम एक पाई लिख दूंगा।

विनोद०—एक पाई भाग का मूल्य ही क्या है ?

कृष्ण०—मेरी आय कोई २ लाख है। उसका एक पाई भाग तीन हजार रुपये से ऊपर हुआ। इससे एक गृहस्थकी दाल-रोटी मजेमें चल सकती है। इससे अधिक न दूंगा।

विनोदलालने बहुत समझाया, किन्तु मालिकका हृदय परिवर्त्तन न हुआ।

—०*०—

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मानन्द नहा-खाकर सोनेकी फिक्रमें थे, ऐसे समय आश्चर्य से उन्होंने देखा कि उनके सामने हरलाल राय हैं। हरलाल उनके सिरहाने बैठ गये।

ब्रह्मा०—अरे, बड़े बाबू ? कब घर आये ?

हर०—अभी घर गया नहीं हूं।

ब्रह्मा०—एकदम यहीं आये हो? कलकत्तेसे कब आये?

हर०—कलकत्तेसे दो दिन हुए आये मुझे। दो दिन कहीं और छिपा रहा। क्या फिर नया बिल होते जा रहा है?

ब्रह्मा०—ऐसा ही तो सुन रहा हूं!

हर०—मेरा हिस्सा इस बार शून्य होगा।

ब्रह्मा०—मालिक अभी क्रोधमें ऐसा ही कह रहे हैं, किन्तु यह क्रोध रहेगा नहीं।

हर०—आज शामको लिखा-पढ़ी होगी? तुम लिखोगे?

ब्रह्मा०—क्या करूं भाई! मालिकके कहने पर नहीं कैसे कर सकता हूं?

हर०—ठीक है, इसमें तुम्हारा क्या दोष? कुछ व्यापार करना चाहते हो?

ब्रह्मा०—थप्पड़ घूंसेसे? तो कर लो, वही।

हर०--यह नहीं, एक हजार रुपये।

ब्रह्मा०—विधवा-विवाह करनेके लिये क्या?

हर०—हाँ, वही।

ब्रह्मा०—उम्र तो बीत चुकी है।

हर०—तो एक नया काम करो। अभी शुरू कर दो बयाना पहले ले लो।

यह कहकर ब्रह्मानन्दके हाथपर हरलालने पांच सौ रुपयेके नोट रख दिये।

ब्रह्मानन्दने उलट-पलटकर देखा और फिर कहा—"यह लेकर मैं क्या करूंगा ?"

हर०—घरमें पुंजी बना लो। दस रुपये मोती ग्वालनको दे देना।

ब्रह्मा०—ग्वालन-फालनका कोई इलाका थोड़े ही रखा हुआ है। लेकिन मुझे करना क्या होगा ?

हर०—दो कलमें बताओ। दोनोंका खत एक समान हो।

ब्रह्मा०—अच्छा भाई ! जो कहोगे, वही सुनना पड़ेगा।

यह कहकर घोष महाशयने दो नयी कलमें लेकर एक समान उसका खत काटा। साथ ही लिखकर भी देख लिया कि दोनोंकी लिखावट एक समान है।

तब हरलालने कहा—"इसकी एक कलम सन्दूकमें बन्द कर रखो। जब बिल लिखने जाना तो यह कलम साथ ले जाना और इसीसे लिखना। दूसरी कलम लेकर अभी मेरे सामने लिखा-पढ़ी करनी होगी। तुम्हारे पास अच्छी रोशनाई है।

ब्रह्मानन्दने दावात निकालकर लिखकर दिखाया। हरलालने कहा—"ठीक है यही दावात लेकर लिखते जाना।"

ब्रह्मा०—तुम्हारे घरका कलम-दावात नहीं है कि मैं इन्हें लादकर ले जाऊंगा ?

हर०—मेरा दूसरा उद्देश्य है—नहीं तो तुम्हें इतने रुपये क्यों देता ?

ब्रह्मा०—मैं भी वही सोच रहा हूं—ठीक कहते हो भैया ?

हर०—तुम्हारे आज दावात-कलम लेकर जानेपर लोग समझ सकते हैं, कि आज यह नई बात क्यों? लेकिन सरकारी कलम-दावातकी निन्दा कर देनेसे ही सारी बातें छिर जायँगी।

ब्रह्मा०—अरे, सरकारी कलम-दावात ही को क्यों? सीधे सरकारकी ही निन्दा कर सकता हूं।

हर०—इतनी जरूरत न पड़ेगी। अब कामकी बात सुनो।

तब हरलालने दो कागज लिखा-पढ़ीवाले निकाले। ब्रह्मानन्दने उन्हें देखकर कहा—"यह तो सरकारी कागज जान पड़ता है?"

"सरकारी नहीं है—लेकिन वकीलोंके यहाँ इसी कागजपर लिखा-पढ़ी होती है। मैं जानता हूं, पिता भी इसी कागजपर लिखा-पढ़ी कराया करते हैं। इसीलिये इन कागजोंको मैंने जुटा रखा है। मैं जो बोलता हूं—इस कागजपर इसी कलम-दावातसे लिखो तो।"

ब्रह्मानन्द लिखने लगे। हरलालने एक बिल लिखा दिया। उसका मर्म यही है कि कृष्णकान्त बिल लिख रहे हैं–उनके नाम जो सम्पत्ति है, उसका बँटवारा कृष्णकान्तको मर जानेपर इस तरह होगा। जैसे विनोदलाल तीन आना, गोविन्दलाल एक पाई, गृहिणी एक पाई, शैलवती एक पाई; हरलालका पुत्र एक पाई; हरलाल ज्येष्ठ पुत्र हैं, इसलिये बारह आना।

लिख जानेपर ब्रह्मानन्दने कहा—"बिल तो तैयार हो गया—अब दस्तखत कौन करेगा?

"मैं।" यह कहकर हरलालने कृष्णकान्त रायका और चार गवाहोंके दस्तखत बना दिये।

ब्रह्मानन्दने कहा—"ठीक है; लेकिन हुआ है तो यह जाली।"

हर०—यही असली विल है—शामको जो लिखोगे वह जाली होगा।

ब्रह्मा०—कैसे ?

हर०—जब तुम विल लिखने जाना तो इस विलको अपनी बगलबन्दीकी जेबमें छिपाकर लिये जाना। वहाँ जाकर इसी कलम-दावातसे उनके इच्छानुसार विल लिखना। कागज, कलम, रोशनाई, लेखक, हरएक एक होगा, अतः दोनों विलमें कोई फर्क देखनेमें न आयेगा। बादमें विलके सुनाने और दस्तखत हो जानेके बाद अन्तमें तुम अपने दस्तखतके लिये लेना। दस्तखत करनेके लिये जरा पीछे फिर जाना और उसी समय सबकी आँख बचाकर विल बदल देना। यह विल मालिकको देना और वह विल लाकर मुझे लौटा देना।

ब्रह्मानन्द घोष विचारमें पड़ गये। फिर बोले—"लेकिन खूब बुद्धि लड़ाई है।

हर०—क्या सोच रहे हो ?

ब्रह्मा०—इच्छा तो जरूर होती है—लेकिन डर मालूम होता है। तुम अपने रुपये वापस ले लो। मुझसे जालसाजी न होगी।

"लाओ रुपये।" यह कहकर हरलालने हाथ फैलाया। ब्रह्मानन्द घोषने रुपये लौटा दिये। नोट लेकर हरलाल लौट गये। तब ब्रह्मानन्दने उन्हें फिर बुलाया—"अरे भाई! लौट गये क्या ?"

"नहीं" कहकर हरलाल फिर वापस हुए।

ब्रह्मा०—अभी तो तुमने पांच सौ दिये। और क्या दोगे ?

हर०—तुम्हारे उस बिलको ला देनेपर और पांच सौ दूंगा।

ब्रह्मा०—रुपये तो काफी हैं—लोभ छोड़ते नहीं बनता।

हर०—तो तुम राजी हो ?

ब्रह्मा०—राजी न होंगे तो क्या होंगे। लेकिन अदला-बदली कैसे करूंगा ? देख लेंगे तो।

हर०—देख कैसे लेंगे ? मैं तुम्हारे सामने बिल देखो बदलता हूं, पकड़ो तो भला !

हरलालको और विद्या आती हो, या न आती हो, हस्तकौशलमें वह कुछ शिक्षा पा चुका है। उन्होंने एक बिलको जेबमें रखा और दूसरे बिलपर दस्तखत करने वाला करने लगे। इसी बीच जेबका कागज हाथमें आ गया और हाथका कागज जेबमें कब चला गया। इस सफाईको ब्रह्मानन्द देख न सके। ब्रह्मानन्द उनकी हाथकी सफाईकी तारीफ करने लगे। हरलालने कहा,—"यह सफाई तुम्हें सिखा दूंगा।" यह कहकर हरलाल उन्हें हाथ-सफाई कराने लगे।

घण्टे-डेढ़ घण्टेमें ब्रह्मानन्दको कौशल आ गया। तब हीरालालने कहा,—"अब मैं जाता हूं। सन्ध्याके बाद बाकी रुपये लेकर आऊंगा।" यह कहकर हरलाल चले गये।

हरलालके जानेपर ब्रह्मानन्द मनमें बहुत डरे। उन्होंने सोचा कि जिस कार्यके लिये वह तैयार हुए हैं; वह पुलिस कानूनमें बड़ा

भारी अपराध है। क्या जाने बादमें उन्हें इसके लिये जेलखानेकी कैद भुगतनी पड़े। और यदि बदली करते समय कोई उन्हें पकड़ ले? तो वह ऐसा काम करनेके लिये क्यों उतारू हुए हैं? न करनेपर हाथमें आये एक हजार रुपये लौटाने पड़ेंगे। यह भी न बन पड़ेगा प्राण रहते।

हाय रे, फलाहार! कितने गरीब ब्राह्मणोंको दिल तुमने दुखाया है। इधर संक्रामक ज्वर, प्लीहासे पेट भरा हुआ है, उसपर फलाहार सामने हैं। ऐसे समय फूलकी थालीमें केलेके पत्तेपर सजायी हुई पूरियाँ, सन्देश, बूंदीके लड्डू, सीताभोग आदिकी ताजा सुन्दर रूप देखकर दरिद्र ब्राह्मण क्या करे? त्याग करेगा, या भोजन करेगा? मैं शपथपूर्वक कह सकता हूं कि ब्राह्मण यदि हजार वर्षतक भी ऐसी सुसज्जित थालीके सामने बैठकर तर्क-वितर्क करें, तो इस प्रश्नका हल न निकाल सकेंगे। हल न कर सकनेपर वह चीजें विना बोले पेटमें उतार जायेंगे।

ब्रह्मानन्द घोष महाशयका भी यही हुआ। हरलालके इन रुपयोंको हजम करना मुश्किल है—जेलखानेका डर है; लेकिन त्याग करते भी नहीं बनता। लोभ भी भारी, लेकिन बदहजमीका भी डर है। ब्रह्मानन्द कुछ निश्चय कर न सके। निश्चय न कर सकनेपर दरिद्र ब्राह्मणकी तरह पेट भरनेकी तरफ ही उनका ध्यान रहा।

—०*०—

तीसरा परिच्छेद

सन्ध्याके बाद ब्रह्मानन्द बिल लिखकर वापस आ गये। देखा कि हरलाल आकर बैठे हैं। हरलालने पूछा,—"क्या हुआ ?"

ब्रह्मानन्द जरा काव्यप्रिय हैं। उन्होंने बड़े कष्टसे हँसकर कहा—"

"मनमें आया चांद धरूं, हाथ बढ़ा दिया,
कांटोंपर पड़ा हाथ, दुःख-दर्द ले लिया।"

हर०—नहीं कर सके क्या ?

ब्रह्मा०—भाई ! मन न जाने कैसा करने लगा ?

हर०—नहीं कर सके ?

ब्रह्मा०—नहीं भाई ! यह लो अपना जाली बिल—और रहे तुम्हारे रुपये।

यह कहकर ब्रह्मानन्दने वह नकली बिल और सन्दूकसे पांच सौ रुपये निकालकर दे दिया। क्रोध और विरक्तिसे हरलालकी आंखें लाल हो गईं, उनके होठ कांपने लगे। उन्होंने कहा,—"मूर्ख, अकर्मण्य ! स्त्रियोंका काम तुमसे हो न सका ? मैं तो चला। लेकिन याद रखना, अगर इस बातकी गन्ध भी तुम्हारे मुंहसे निकली, तो तुम्हारी जानकी खैरियत नहीं।"

ब्रह्मानन्दने कहा,—"इसकी फिक्र न करो। मुझसे किसी तरह भी यह बात प्रगट हो नहीं सकती।"

वहांसे उठकर ब्रह्मानन्दके रसोईघरमें गये। हरलाल घरके

लड़के हैं, सभी जगह आ-जा सकते हैं। रसोईघरमें ब्रह्मानन्दकी भतीजी रोहिणी रसोई बना रही थी।

इस रोहिणीसे हमारा कुछ विशेष सम्बन्ध है। अतः उसके रूप-गुणका वर्णन कुछ करना चाहिये। लेकिन आजकल रूपके वर्णनका बाजार बहुत गर्म है—और गुण वर्णन—हालके कानूनके अनुसार अपना छोड़कर दूसरेका कर नहीं सकते। फिर भी, इतना तो करना ही पड़ेगा कि रोहिणीका यौवन बरसाती नदीकी तरह पड़ा हुआ है-रूप उछला पड़ता है, शरतके चन्द्र अपनी सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण हैं। वह बाल-विधवा हैं—किन्तु विधवाके अनुकूल न होनेके उसमें अनेक अवगुण हैं। दोष यही कि वह काले पाढ़की धोती पहनती है, हाथमें चूड़ी पहनती और शायद पान भी खाती है। इधर रसोई बनानेमें वह द्रौपदी, तरकारी, पापड़, पकवान, बड़ा, पकौड़ी कढ़ी बनानेमें सिद्धहस्त हैं। उसमें बनाव श्रृङ्गारमें, गहना पहननेमें, फुल सजानेमें और सूची कलामें तो वह अतुलनीय हैं ही। चोटी गूंथने, लड़कियोंको सजानेमें वही महल्लेकी एकमात्र भरोसा है। उसका कोई अपना सहायक नहीं है, इससे ब्रह्मानन्दके घरमें रहती है।

सुन्दरी रोहिणी ठन-ठन करती हुई दालकी बटलोहीमें कलछी घुमा रही थी, दूर एक बिल्ली खानेकी ताकमें बैठी थी, पशुजाति रमनीजाति बिजली जैसे कटाक्षसे कांप उठती है या नहीं, यह देखनेके लिये रोहिणी उसके ऊपर रह रहकर विषपूर्ण मधुर कटाक्षदात कर रही थी, बिल्ली भी उस कटाक्षको तली हुई मछलीके

आहारका निमंत्रण समझकर जब धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी, ऐसे ही समय हरलाल बाबू अपने जूतोंको मचमचाते हुए भीतर आये। बिल्ली तली हुई मछलीका लोभ छोड़कर भाग खड़ी हुई, रोहिणी हाथसे कलछी छोड़कर, हाथ धोकर, घूंघट निकालकर खड़ी हो गई। नाखूनसे नाखून कुरेदते हुए उसने कहा—"बड़े चाचा! कब आये?"

हरलालने जवाब दिया—"कल आया हूं। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

रोहिणी सिहर उठी। बोली,—"आज यहीं खायेंगे क्या? पतला चावल भातके लिये चढ़ा दूं?"

हर०—हाँ, हां, चढ़ाओ, लेकिन वह बात नहीं है। क्या तुम्हें अपनी उस एक दिनकी बात याद है?

रोहिणी चुपचाप जमीन देखती रही। हरलालने कहा—"उसी दिन, जिस दिन तुम गङ्गा-स्नान करके लौट रही थी और अपने दलसे बिछुड़कर छूट गई थी, याद आता है?

रोहिणी—(बाएं हाथकी चार उंगलियाँ दाहिनी हथेली पर रखकर) हाँ, याद है।

हर०—जिस दिन तुम भूलकर मन्दिर चली गई थी, याद है?

रोहिणी—याद है।

हर०—वहाँ तुम्हें रात हो गई और वहाँ से निकलनेपर कितने ही बदमासोंने तुम्हारा पीछा किया—याद है?

रोहिणी—है।

हर०—उस दिन तुम्हें किसने बचाया था ?

रोहिणी—तुमने। तुम घोड़ेपर चढ़े हुए उसी मन्दिर की राह कहीं जा रहे थे।

हर०—सालीके घर।

रो०—तुमने मुझे देखकर मेरी रक्षा की थी—मुझे, पालकी और कहार बुलाकर घर भेजवा दिया था। खूब मजेमें याद है। वह उपकार मैं कभी भूल नहीं सकती।

हर०—आज उस उपकारका बदला चुका सकती हो। उसपर भी मुझे जन्मभरके लिये खरीद ले सकती हो—बोलो, करोगी ?

रो०—क्या कहिये—मैं प्राण देकर भी आपका उपकार करूंगी।

हर०—करो या न करो। लेकिन यह बात किसीके सामने प्रकट न करना।

रो०—प्राण रहते नहीं।

हर०—कसम खाओ।

रोहिणीने कसम खाई।

तब हरलालने कृष्णकान्तके असल और नकल बिलकी बात उसे समझा दी। अन्तमें उन्होंने कहा—"वही असली बिल चोरी करके जाली बिल उसके बदले रख आना होगा। हमलोगोंके घर तो तुम बराबर जा सकती हो। तुम बुद्धिमान हो, सहज ही यह काम कर सकोगी। मेरे लिये क्या इतना करोगी ?"

रोहिणी काँप उठी। बोली—"चोरी ? मुझे मारकर टुकड़े-टुकड़े कर देनेपर भी यह न कर सकूंगी।"

हर०—नारी जाति ऐसी ही असार होती हैं। बात ही बात होती है उनकी। मैं समझता हूं कि इस जन्ममें तुम मेरे उपकारका बदला चुका नहीं सकतीं।

रो०—और जो कहिये, सब करूंगी। मरनेको कहें, तो मर सकती हूं। लेकिन यह विश्वासघाती काम नहीं कर सकती।

हरलाल किसी तरह भी जब रोहिणीको राजी न कर सके तो एक हजारके नोट हाथपर रखने लगे। बोले—"यह एक हजार रुपये इनाम अगला लो। यह काम तुम्हें करना ही पड़ेगा।

रोहिणीने नोट नहीं लिये। बोली—"रुपये की लालच नहीं करती। मालिककी सारी सम्पत्ति देनेपर भी कर न सकूंगी। करना होता तो केवल आपकी बातपर ही कर देती।"

हरलालने लम्बी सांस खींची; फिर बोले--"मनमें सोचा था, रोहिणी! तुम मेरी हितैषी हो। लेकिन पराया कभी अपना हुआ है? देखो, आज यदि मेरी स्त्री होती, तो मैं तुम्हारी खुशामद नहीं करने कभी न आता। वही मेरा यह काम कर देती।"

इस बार रोहिणी थोड़ा हँसी। हरलालने पूछा--"क्यों हँसी, क्यों?"

रो०--आपकी स्त्रीके नामसे वह विधवा-विवाहकी बात याद आ गई। आप क्या विधवा-विवाह करेंगे।

हर०—इच्छा तो है—लेकिन मनके मुताबिक विधवा मिलेगी कहाँ?

रो०—विधवा हो या सधवा हो—यानी विधवा हो या कुमारी

हो—एक विवाह कर संसारी बननेसे ही काम निकल सकता है। हमलोग आत्मीय-स्वजन, सभी तो ऐसा होनेसे खुश होंगे।

हर०—देखो, रोहिणी विधवा-विवाह शास्त्रसम्मत है।

रो०—यह तो आज सभी लोग कहते हैं।

हर०—देखो, तुम भी तो एक शादी कर सकती हो—क्यों न करोगी ?

रोहिणीने थोड़ा और घूंघट निकालकर मुंह घुमा लिया।

हरलाल कहने लगे—"तुम लोगोंके साथ हमारा केवल गाँवका रिस्ता है—सम्बन्ध तो है नहीं।"

अब रोहिणी और लम्बा घूंघट निकालकर बैठ गई और लगी बटलोहीमें कलछी घुमाने। यह देखकर खिन्न होकर हरलाल वापस जाने लगे।

हरलाल जब दरवाजेके पास पहुंचे तो रोहिणीने कहा—"न हो कागज रखे जाइये, देखूं क्या कर सकती हूं।"

हरलालने प्रसन्न होकर जाली बिल और रुपये रोहिणीके पास रख दिये। देखकर रोहिणी बोली—"नोट नहीं; सिर्फ बिल रखिये।"

हरलाल केवल जाली बिल छोड़कर नोट लेकर चले गये।

—०*०—

चौथा परिच्छेद

उसी दिन रात आठ बजेके समय कृष्णकान्त राय अपने सोनेके

कमरेमें पलङ्गपर बैठे हुए, मसनदके सहारे उठँगकर सटका लगाये हुए तमाखू पी रहे थे—और संसारकी एकमात्र ओषधि और-नशेमें श्रेष्ठ-अहिफेन उर्फ अफीमके मीठे नशेमें पिनक ले रहे थे। पिनकमें क्या देखते हैं। मानो उनका वह बिल बिक्रीका कवाला हो गया है। मानो हरलालने उनकी सारी सम्पत्ति तीन रुपये तेरह आने एक टुकड़ेमें खरीद ली है। फिर किसीने जैसे कह दिया हो कि,—"नहीं, यह दानपत्र नहीं—तमस्सुक है। इसके बाद ही पिनकमें देखने लगे-ब्रह्माके बेटा विष्णुने आकर वृषयारूढ़ महादेवसे एक गोली इफीम कर्ज लेकर यही दलील लिख देकर त्रिश्वब्रह्माण्डको बन्धक रख दिया है—महादेव गाँजेके फाँकमें फोरक्लोज करना भूल गये हैं। ऐसी ही समय रोहिणीने धीरे-धीरे कमरेमें प्रवेशकर कहा,—"दादाजी ! क्यों सो रहे हैं ?"

कृष्णकान्तने विना सिर उठाये कहा,—"कौन नन्दी ? ठाकुरसे फोरक्लोज करनेके लिये कहा।"

रोहणी समझ गयी कि कृष्णकान्त इस समय अफीमके पीनकमें हैं। हंसकर बोली,—दादाजी ! नन्दी कौन है ?"

कृष्णकान्तने विना सिर उठा ही कहा,—"हूं, ठीक कहा। वृन्दावनमें ग्वालेके यहाँका मक्खन खाया था। आजतक उसका पैसा नहीं दिया है।"

रोहिणी खिल-खिलाकर हंस पड़ी। तब कृष्णकान्त चिहुंक उठे। माथा उठाकर देखकर बोले,—"कौन है, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी ?"

रोहिणीने जवाब दिया,—"मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्प।"

कृष्ण०—अश्लेषा, मघा, पुनर्वसु।

रोहि०—दादाजी ! मैं क्या तुम्हारे पास ज्योतिष सीखनेके लिये आयी हूं ?

कृष्ण०—यही तो ! तब कैसे आईं ? अफीम तो नहीं चाहिये ?

रोहि०—वह क्या जीवन रहते आप दे सकते हैं, उसके लिए नहीं आई हूं। मुझे तो काकाने भेजा है, इसीलिये आई हूं।

कृष्ण०—यह-यह; आखिर हकीमके लिये ही न ?

रोहि०—नहीं, दादाजी। नहीं। तुम्हारी कसम अफीम नहीं चाहिये। काकाने कहलाया है कि आज जो बिल लिखा-पढ़ी हुई है, उसमें तुम्हारे दस्तखत नहीं हुए।

कृष्ण०—अरे, मुझे तो मजेमें याद है कि मैंने दस्तखत किये हैं।

रोहि०—नहीं, काकाका कहना है कि उन्हें याद आता है कि तुमने उसपर दस्तखत नहीं किया है। ठीक तो है, सन्देह रखनेकी जरूरत क्या ? तुम एकबार उसे खोलकर देख लो।

कृष्ण०—ठीक ; तो जरा लालटेन उठाओ तो ?

यह कहकर कृष्णकान्तने उठकर तकियाके नीचेसे तालीका गुच्छा निकाला। रोहिणीने अपने हाथमें रोशनी ली। पहले तो कृष्णकान्तने एक-बक्स खोला और उसमेंसे एक बड़ी विचित्र ताली निकाली। उससे चेस्टड्रावरकी एक दराज खोली और खोजकर वह बिल निकाला। इसके बाद बक्ससे चश्मा निकालकर नाकपर चढ़ानेकी कोशिश करने लगे। लेकिन चश्मा निकालते-निकालते

हो-एक बार उन्हें अफीमकी पीनक आयी ही गयी—अतः उसमें भी कुछ समय बीता। अन्तमें किसी तरह चशमा जब दिखाने लगा, तो देखकर कृष्णकान्तने हंसकर कहा,—"रोहणी ! मैं क्या बूढ़ा होकर पागल हो गया हूं ? यह देखो मेरा दस्तखत है।"

रोहिणीने कहा,—"राम-राम बूढे क्यों हो जायेंगे ? हमलोगोंके नाती-नतिनी होनेसे ही क्या। ठीक है, तो मैं जाकर दादासे बता दूं।"

यह कहकर रोहिणी कृष्णकान्तके सोनेवाले कमरेसे बाहर हुई।

× × × ×

सन्नाटी रात थी; कृष्णकान्त सो रहे थे। अकस्मात् उनकी नींद खुल गयी। जागते ही उन्होंने देखा कि उनके कमरेमें रोशनी नहीं है। प्रायः बराबर रातको कृष्णकान्तके कमरेमें रातभर दिया जला करता है। लेकिन आज उन्होंने देखा कि रोशनी बुझ गयी है। नींद टूटते समय उन्हें ऐसा भी भान हुआ, जैसे कोई दराजमें चाबी घुमा रहा हो। यह भी अनुभव हुआ कि घरमें कोई चल फिर रहा है। मनुष्य उनकी पलङ्गके पास सिरहाने तक आया—उनको तकियाको उसने छुआ भी। कृष्णकान्त अफीमके नशेमें विभोर हैं—सोते हैं, या जागते हैं—मजेमें समझ न सके। घरमें रोशनी नहीं है—इसे भी वह मजेमें समझ न सके; कभी अर्द्ध निद्रित, कभी अर्द्ध सचेतन—जागते रहनेपर भी आखें खुलती नहीं। एक बार दैवात् आंख खुली सही, लेकिन उन्होंने अन्धेरा देखा, तो समझे कि हरिघोषके मुकदमेमें उन्होंने जाली दलील पेश की और

इसीलिये उन्हें जेल हो गयी है। जेलखानेमें घोर अन्धकार है। कुछ देर बाद एकाएक ताला खुलनेका शब्द उनके कानोंतक पहुंचा—यह क्या जेलके फाटकका ताला बन्द हुआ? एकाएक वह चिहुंक उठे। कृष्णकान्तने हुक्केका सटका हाथमें उठानेके लिये हाथ बढ़ाया, पाया नहीं—अभ्यासके अनुसार उनके मुंहसे निकल गया,—"हरी!"

कृष्णकान्त अन्तःपुर में सोते न थे—बाहरी घरमें ही सोते थे। दोनों तरफके बीच में एक कमरा था—उसीमें सोते थे। वहां हरी नामका एक खानसामा पहरेदार की तरह हमेशा सोता था। और कोई नहीं। कृष्णकान्त ने उसे ही बुलाया,—"हरी!"

कृष्णकान्त दो ही एक बार हरीको बुलाकर फिर अफीमकी पीनकमें आ गये। असली बिल उसी समय उनके घरसे गायब हो गया। जाली बिल उसके स्थानपर रख दिया गया।

—o✻o—

पांचवां परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे रोहिणी फिर वहीं बैठी है, फिर वहीं हरलाल झांक-ताक लगा रहा है। सौभाग्यसे ब्रह्मानन्द घरमें न थे—नहीं तो न जाने क्या मनमें सोचते।

हरलाल धीरे-धीरे रोहिणीके पास गये—रोहिणीने उधर मजेमें देखा भी नहीं। हरलालने कहा,—"जरा इधर देखो—हण्डी फटेगी तो नहीं?"

रोहिणीने देखकर हँस दिया। हरलालने पूछा,—"क्या दिया ?"

रोहिणीने चुराया हुआ बिल लाकर हरलालको देखनेको दिया। हरलालने पढ़कर देखा—असली बिल ही था। उस समय दुष्टके चेहरे पर हँसी न थी। बिल हाथमें लेकर उसने पूछा—"कैसे पा सकी; इसे ?"

रोहिणीने एक कहानी शुरू की। सच्ची बात कुछ न बताई। एक मिथ्या उपन्यासकी रचना करने लगी। कहते-कहते उसने हरलालके हाथ से बिल लेकर वह नाट्य करती हुई बताने लगी, कि किस तरह एक कागज कलम-दानमें पड़ा हुआ था। बिल चोरीकी कहानी समाप्त कर रोहिणी हठात् बिल लिये हुई चली गयी। जब वह लौटी, तो उसके हाथमें बिल न था। यह देखकर हरलालने पूछा,—"बिल कहाँ रख आयी ?"

रो०—यत्नपूर्वक रख दिया है।

हर०—उसे यत्नसे रखनेसे क्या होगा, मैं तो अभी जा रहा हूं।

रो०—अभी जाओगे ? इतनी जल्दी काहेकी है ?

हर०—यहां रहनेका अवसर नहीं है।

रो०—तो जाओ।

हर०—बिल ?

रो०—मेरे पास रहने दो।

हर०—यह क्या ? बिल मुझे न दोगी ?

रो०—वह जैसे तुम्हारे पास रहा, वैसे मेरे पास रहा।

हर०—यदि मुझे बिल न दोगी, तो उसे चुराया क्यों था ?

रो०--आपके लिये ही ऐसा किया है। जब आप विधवा-विवाह करेगें तो मैं यह बिल आपकी स्त्रीको दे दूँगी। आप इसे नाहक फाड़कर फेंक देंगे।

हरलाल समझ गये। बोले,--"यह हो नहीं सकता। रोहिणी! जितने रूपय चाहो ले लो।"

रो०—एक लाख रुपये देनेपर भी नहीं। जो देनेका वचन दे चुके हो, वही चाहती हूं।

हर०—यह न होगा। मैं जाल करूँ, चोरी करूं, अपने हकके लिये करूंगा। तुमने किसके हकके लिए चोरी की है!

रोहिणीका मुंह सूख गया। वह नीचा सिर किये रह गयी। हरलाल कहने लगे,--"मैं चाहे कोई भी हूं। जिसने चोरी की है, उसे कभी गृहिणी बना नहीं सकता।"

रोहिणी सहसा उठकर खड़ी हो गयी। घुंघट हटाकर और हरलालकी आँखोंसे आंखें मिलाकर उसने कहा,—"मैं चोर हूँ! और तुम साधु हो! किसने मुझे चोरी करनेके लिये कहा था? किसने मुझे इतना बड़ा लोभ दिखाया? सरला स्त्रीको देखकर किसने ठगपन किया! जिस शठतासे बढ़कर दूसरी शठता नहीं, जिस झूठसे बढ़कर दूसरा झूठ नहीं, नीच बर्बर भी जिस बातको जबानपर ला नहीं सकता, तुमने कृष्णकान्त रायके पुत्र होकर वही किया। हाय! हाय मैं तुम्हारे अयोग्य हूं! ऐसी कोई हतभागी न होगी, जो तुम जैसे शठ और नीच को ग्रहण करे। तुम आज यदि औरत होते तो जिस

चीजसे घर झारती हूं, उससे खबर लेती। तुम पुरुष हो, बस यही समझते हुए यहांसे चले जाओ।"

हरलालने भी समझा—उपयुक्त दण्ड मिला–धीरे-धीरे वहांसे विदा हुआ। जानेके समय मुस्कुराता जाता था। रोहिणीने भी समझा—उपयुक्त हुआ है—दोनों तरफसे। वह जूंड़ा खोंसके रसोईमें लग गयी। क्रोधमें उसकी वेणी खुल गई थी। उसकी आँखोंमें आँसू आ रहे थे।

—०*०—

छठा परिच्छेद

तुम बसन्तकी कोयल हो! दिल खोलकर गाओ, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है; किन्तु तुमसे मेरी विशेष प्रार्थना है, समय समझकर गाना। समय, कुसमय, हर समयका गाना अच्छा नहीं। देखो, मैंने बड़ी खोजकर कलम-दावात इत्यादिका दर्शन पाया और भी अधिक खोज-खाजकर मनको पाया; कृष्णकान्तके विलकी कहानी लिखने बैठा, ऐसे समय आकाशसे तुमने स्वर भरा–"कुहू! कुहू! कुहू!" तुम बड़ी सुकण्ठ हो, इसे मैं स्वीकार करता हूं; किन्तु सुरीला होनेसे ही किसीको गानेका अधिकार नहीं है। जो हो, मेरे बाल पक चुके हैं, कलम चला रहा हूं, ऐसे समय तुम्हारे गानेसे बहुत हानि नहीं होती। लेकिन देखो, नये बाबू लोग जब रुपयेकी ज्वालासे व्यतिव्यस्त हो, जमा-खर्च मिलानेमें अपना माथा खपा रहे हैं, तब उस आफिसकी टूटी दीवारपरसे जो कहीं

तुमने आवाज कस दी—"कुहू" बस, तो फिर बाबूका जमा-खर्च मिल नहीं सकता। जब विरह-सन्तप्ता सुन्दरी प्रायः समूचे दिनके बाद अर्थात् रात नौ बजे कुछ खानेके लिये बैठती हैं और जैसे ही खीरका कटोरा सामने खींचती हैं, वैसे ही तुमने स्वर भरा--"कुहू"--सुन्दरीकी खीर वैसे ही रह गई--शायद अनमनी होकर उन्होंने उसमें नमक मिलाकर खाया। जो हो, तुम्हारे कुहूमें कुछ जादू है, नहीं, तो जब तुम बकुलवृक्ष परसे गा रही थी-और विधवा रोहिणी बगलमें कलसी दबाकर पानी लाने जा रही थी--तब—लेकिन पहले पानी लानेके लिये जानेका परिचय तो करा दूं!

हां, बात यह है। ब्रह्मानन्द घोष दुखिया हैं—नौकर मजदूर भी कहांसे पावेंगे। यह सुविधा है या कुविधा, यह नहीं बता सकता। सुविधा हो, या कुविधा हो, जिसके घर मजदूरनी नहीं है, उसके घर ठगी, झूठ रोना-धोना और गन्दगी यह चार वस्तुएं न मिलेंगी। मजदूरनी नामकी देवी इन चारों चीजोंकी सृष्टिकर्ती है। उसपर जिनके घर अनेक मजदूरियाँ हैं, उनके घर रोज कुरुक्षेत्र मचा रहता है—नित्य रावणवध होता है। कोई मजदूरनी भीमरूपिणी सदैव सम्मार्जिनी गदा हाथोंमें लिए घूम रही है, कोई उसकी प्रतिद्वन्द्वी राजा दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे वीरोंको धिक्कार रही है, कोई कुम्भकर्ण रूपिणी है—छ महीनों तक सोती है—नींद से उठते ही सर्वस्व खाती है, कोई सुग्रीव गला पटकाकर कुम्भकर्ण वधका उद्योग कर रही है। इत्यादि।

ब्रह्मानन्दके घर यह सब आपद-विपद न थी। इसलिये पानी

भरना, वर्तन माँजना, सब रोहिणीके ही कपालपर था। सन्ध्याको सारा काम समाप्तकर रोहिणी पानी भरने चलती है। जिस दिनकी घटनाका वर्णन किया है, उसके दूसरे दिन ठीक समयपर रोहिणी कलसी लेकर जल भरने जा रही थी। बाबू लोगोंका एक बहुत बड़ा तालाब है। उसका नाम वारुणी है—उसका जल बहुत मीठा होता है। रोहिणी वहीं जल लाने जाती है। आज भी जा रही थी। रोहिणी अकेले जल लाने जाती है। दल बटोकर हलकी औरतोंके साथ हलकी हंसी हंसती हुई, हलका कलसीमें हलका जल लानेका रोहिणीको अभ्यास नहीं है। कृष्णकी कलसी भारी है, चालचलन भी भारी है। फिर भी, रोहिणी विधवा है। लेकिन विधवाकी तरह रहती नहीं। होठोंपर पानकी घड़ी, हाथोंमें कड़ा, फीतापाढ़की धोती और कन्धोंके ऊपर सुन्दर गठनवाली, कालभुजङ्गिनी जैसे कुंडली मारे हुई चंचल मनोहर वेणी। पातलकी कलसी छातीपर चलनेके कारण हिलनेसे धीरे-धीरे कलसी नाच रही है जैसे लहरोंपर हंसा लहरा लेती है, उसी तरह धीरे-धीरे कलसी नाच रही है। दोनों चरण धीरे-धीरे जमीनपर इस तरह गिर रहे थे। जैसे वृक्षसे गिरनेवाला फूल गिरता है। इस तरल रसकी भरी कलसी तालपर नाच रही थी। भूमती-झामती पाल लगे हुए जहाजकी तरह धीरे-धीरे हिलती-डोलती रोहिणी सुन्दरी सरोवरकी राहको आलोकित करती हुई चली जा रही थी। ऐसे ही समय बकुल वृक्षपर बैठकर बसन्ती कोयलने पुकारा।

"कुहू! कुहू! कुहू!" रोहिणीने ठहरकर चारो तरफ देखा।

मैं सपथ खाकर कह सकता हूं कि रोहिणीकी वह अर्द्ध विक्षिप्त स्पन्दित विलोल कटाक्ष यदि डालपर बैठी हुई कोयल देख पाती तो तुरत वह क्षुद्र पक्षी नयन शरसे विद्ध हो उलटा पलटता चक्कर खाता हुआ आ गिरता। किन्तु पक्षीके भाग्यमें यह न बदा था। कार्यकारणकी अनन्त श्रेणी परम्परासे वह बंधी हुई न थी अथवा पक्षीका पूर्व जन्मका कमाया हुआ उतना पुण्य न था। मूर्ख पक्षीने फिर पुकारा—"कुहू ! कुहू ! कुहू !"

"दूर हो, कलमुंहे !" कहकर रोहिणी चली गयी। चली गयी लेकिन कोयल भूल न सकी। हमारा दृढ़ विश्वास है कि कोयलने असमय पुकारा था। गरीब विधवा युवती अकेली पानी भरने जा रही थी। ऐसे समय पुकारना ठीक नहीं हुआ। कारण कोयलकी पुकार सुनकर कितनी ही बातें याद आ जाती हैं, जैसे कुछ खो दिया है मानो उस खो जानेसे जीवन असार हो गया मानो वह अब फिर प्राप्त होनेका नहीं। कहीं जैसे रत्न खो दिया है जैसे कोई रोनेके लिये बुलाता है। मानो यह जीवन वृथा गया। सुखकी मात्रा पूरी न हुई जैसे इस अनन्त संसारका सौन्दर्य कुछ भी भोगा न गया हो।

फिर कुहू, कुहू, कुहू ! रोहिणीने देखा, सुनील अनन्त गगन निःशब्द साथ ही कुहुककी ध्वनिसे ध्वनित हो उठा है ! देखा आमके पेड़पर बैठे हुए नये फूल चमकता हुआ सोने जैसा रंग हर पत्तोंके श्यामरंगके साथ मिला हुआ, शीतल सुगन्धसे परिपूर्ण केवल मधुमक्खी या भौंरेके गुनगुनाहट शब्दसे ध्वनित, साथ ही

उस कुहुकका बंधा हुआ स्वर। देखा—सरोवरतटपर गोविन्दलालका बगीचा उसमें फूल खिले हुए हैं, गुच्छोंमें, लता-लतामें, शाखा प्रशाखामें, पत्तों-पत्तोंमें जहाँ-तहाँ फूल खिले हुए हैं। कोई सफेद कोई लाल, कोई पीला, कोई नीला, कोई छोटा, कोई बड़ा—कहीं मधुमक्खियाँ तो कहीं भौंरे उस कुहुकसे वायुकी उन स्वरलहरियोंके साथ मधुर सुगन्ध आ रही है। और उसी कुंजवनकी छायाके नीचे गोविन्दलाल स्वयं खड़े हैं। उनके छते-काले कुंचित केश उनके चम्पा जैसे रङ्गवाले कन्धोंपर छितराये हुआ पड़ा है—फूले हुए वृक्षसे भी अधिक सुन्दर उस उन्नत देहके ऊपर एक फूली हुई लताकी शाखा पड़ी हुई हिल रही है—कैसा स्वर मिला है। यह भी उसी पंचम कुहुक स्वरसे बंधा हुआ है। कोयलने फिर एक कोयल वृक्षके ऊपरसे गया,—"कू-कू" उस समय रोहिणी सरोवरकी सीढ़ियोंसे उतर रही थी। रोहिणी सीढ़ीसे उतरकर कलसी जलमें डुबाकर रोनेके लिये वहीं बैठ गयी।

क्या रोनेके लिये बैठी, मैं नहीं जानता। स्त्रियोंके मनकी बात मैं कैसे बता सकता हूं? लेकिन मुझे सन्देह है कि शायद इसी दुष्ट कोयलने रोहणीको रुलाया है।

—o✱o—

सातवां परिच्छेद

वारुणी पुष्करिणीकी बात उठाकर मैं बड़े झंझटमें पड़ गया। मैं उसका वर्णन पूरा कर नहीं पाता हूं। पुष्करिणी खूब बड़ी है,

नीले शीशेपर घासका चारों तरफ फ्रेम जड़ा हुआ है। उस घासके फ्रेमके ऊपर एक और बागका फ्रेम है—पुष्करिणीके चारों तरफ बाबू लोगोंका बगीचा है—उद्यानके वृक्षोंका और चहारदीवारीका अन्त नहीं है। वह फ्रेम विविध रङ्गमय—लाल, काला, सब्ज, गुलाबी, सादा, जर्द, तरह-तरहके फूलों द्वारा पीना किया हुआ है। डूबते हुए सूर्य्यकी रोशनीमें बीच-बीचके बैठकखाना और मकान जड़े हुए हीरेकी तरह चमक रहे हैं। और माथेके ऊपर आकाश वह भी मानो उसी बागके फ्रेमसे सम्बद्ध है—वह भी एक नीला आईना है। वह नीला आकाश, बगीचाका वह नीला फ्रेम और वह घासका फ्रेम, फूल, फल, वृक्ष, मकान, सब उसी नीले जलके दर्पणमें प्रतिविम्बित हो रहे थे। बीच-बीचमें वही कोकिलकी पुकार। यह सब तो समझा जा सकता है, किन्तु वह आकाश, वह तालाब, और उस कोयलके गानके साथ रोहिणीके मनका क्या सम्बन्ध है, यही मैं समझ नहीं पाता हूं। इसीलिये कहता हूं कि इस तालाबके वर्णनसे मैं बड़े झंझटमें पड़ गया।

मैं भी झंझटमें पड़ा और गोविन्दलाल भी बड़े झंझटमें पड़े। गोविन्दलाल उस फूली हुई लताकी आड़से देख रहे थे कि रोहिणी सीढ़ीसे उतरकर अकेली बैठके रो रही है। गोविन्दलालने मनमें समझा कि पड़ोसकी किसी स्त्रीसे झगड़ा होनेके कारण रोहिणी बैठकर रो रही है। किन्तु गोविन्दलालके सिद्धान्तपर निर्भय नहीं रहा जा सकता। रोहिणी रो रही थी।

नहीं बता सकता कि रोहिणी क्या सोच रही थी। लेकिन

जान पड़ता है, सोचती थी कि किस अपराधसे मेरे भाग्यमें यह बालवैधव्य बदा था ? मैंने दूसरोंकी अपेक्षा ऐसा कौनसा भारी अपराध किया है, कि इस पृथ्वीका कोई सुख भोग न सकी ? किस पापके कारण मुझे यह यौवन रहते हुए दुखी लड़की तरह इस जीवनको बिताना पड़ रहा है ? जो लोग इस जीवनके सारे सुखोंसे सुखी हैं—मान लो, यह गोविन्दलालकी स्त्री है—किस पुण्यफलसे उनके भाग्यमें यह सुख है और मेरे भाग्यमें शून्य है ? हटाओ—सुख दूसरेका देखकर मैं कातर नहीं हूं—लेकिन मेरी सारी राहें बन्द क्यों हैं ? मैं इस कष्टमय जीवनको रखकर क्या करूंगी ?

तो, हमने तो कह दिया, रोहिणी अच्छी स्त्री नहीं है। देखो इसीमें कितनी बड़ी दुर्तिहिंसा है । रोहिणीके अनेक दोष हैं—उसका रोना देखकर क्या रुलाई आती है ? नहीं आती ? किन्तु इतना विचार अच्छा नहीं—दूसरोंकी रुलाई देखकर रोना ही अच्छा है। देवता लोगोंके बादल सूखे खेत देखकर वृष्टि करनेसे रुक नहीं सकते ।

तो, तुमलोग भी रोहिणीके लिये एकबार आह करो। देखो, बेचारी अभी भी घाटपर बैठी रो रही है। शून्य कलसी जलपर हवाकी गति पाकर नाच रही है ।

अन्तमें सूर्य्य अस्त हुए। धीरे-धीरे सरोवर नीले जलपर काली छाया पड़ी। अन्तमें अन्धेरा हो आया। पक्षी उड़-उड़कर पेड़की डालियोंपर आश्रय लेने लगे। गौवें अपने-अपने घरकी तरफ

चली गयीं। ऐसे समय चन्द्रोदय हुआ—अन्धकारपर हलकी रोशनी फैली। अभी भी रोहिणी घाटपर बैठकर रो रही है—उसकी कलसी उस समय भी जलपर तैर रही थी। तब गोविन्दलाल भी बागसे घरकी तरफ चले जानेके समय उन्होंने देखा, उस समय भी रोहिणी घाटपर बैठी थी।

इतनी देरतक अबला अकेली बैठी रो रही है, यह देखकर उन्हें दुःख हुआ। तब उन्होंने सोचा कि यह स्त्री सच्चरित्रा हो, चाहे दुश्चरित्रा, यह जगत्पिता द्वारा प्रेरित एक संसार पतंग है—मैं उन्हीं द्वारा भेजा हुआ एक संसार पतङ्ग हूं, अतः यह मेरी भगिनी स्वरूप है। यदि इसका दुःख दूर कर सकूं—तो क्यों न करूं ?

गोविन्दलाल धीरे-धीरे सीढ़ी उतरकर रोहिणीके पास जाकर उसकी बलगमें चम्पनिर्मित मूर्तिकी तरह चम्पवर्ण चन्द्रकिरणमें जा खड़े हुए। रोहिणी देखकर चिहुंक गयी।

गोविन्दलालने पूछा,—"रोहिणी ! तुम इतनी देरतक अकेली बैठकर रो क्यों रही हो ?"

रोहिणी उठकर खड़ी हो गयी, लेकिन चुप रही।

गोविन्दलालने फिर पूछा,—"तुम्हें क्या दुःख है। क्या मुझे न बताओगी ? शायद मैं कोई उपकार कर सकूं।"

जो रोहिणी हरलालके सामने वाचालकी तरह बातें कर रही थी—गोविन्दलालके सामने वही रोहिणी एक शब्द बोल न सकी। कुछ न बोली—गढ़ी हुई पुतलीकी तरह तालाबकी सीढ़ीकी शोभा

बढ़ाने लगी। गोविन्दलालने उस स्वच्छ सरोवर जल में उसे 'भास्करकीर्त्तिकल्प' मूर्तिकी छाया देखी, पूर्णचन्द्रकी छाया देखी और फूले हुए सुनहली पेड़ोंकी छाया देखी। सब कुछ सुन्दर है—केवल निर्दयता भी कुरूप है। सृष्टि करुणमयी है-मनुष्य निर्मम है। गोविन्दलालने प्रकृतिके स्पष्ट अक्षरोंको पढ़ा। उन्होंने रोहिणीसे फिर कहा—तुम्हें यदि किसी तरहका कष्ट हो, तो आज या कल मुझसे कहना। यदि स्वयं न कह सकती हो, तो हमलोगोंके घरकी स्त्रियोंसे कहलाना।

अब रोहिणी बोली। उसने कहा,—"एक दिन कहूंगी। आज नहीं। एक दिन तुम्हें मेरी बात सुननी होगी।"

गोविन्दलालने स्वीकार कर घरकी राह ली। रोहिणीने जलमें उतरकर कलसेको पकड़, उसमें जल भरा—तब कलसीने बक-बक गल-गल शब्दकर बहुत आपत्ति की। मैं जानता हूं कि सूनी कलसीमें जल भरनेपर, कलसी, युक्तकलसी या मनुष्य कलसी इसी तरहकी आपत्ति किया करती हैं। बादमें खाली कलसी जलसे भरजानेपर रोहिणीने घाटकी सीढ़ियाँ चढ़कर अपने गीले वस्त्र निचोड़े और उससे अपनी देह ढंककर धीरे-धीरे घरकी तरफ चली। उस समय चलत् छलत् ढवाक् झिमिक ठिमिकि ठिन! बोलती हुई कलसीमें और कलसीके जलसे और रोहिणीकी दड़ोंसे कथोपकथन होने लगा। रोहिणीका मन भी उसी कथोपकथनमें मिल गया—

रोहिणीके मनने कहा—बिल चोरी करनेका काम!

जल बोला—छलात् ।

रोहिणीका मन—काम अच्छा नहीं हुआ ।

कड़ेने कहा—ठिन् ठिना·ना ! ना !

रोहिणीका मन—अब उपाय ?

कलसी—ठनक् टनक् टन्—उपाय मेरे साथ रस्सी बांधकर ।

—०*०—

आठवाँ परिच्छेद

रोहिणी आज जल्दी·जल्दी रसोई बनाकर, ब्रह्मानन्दको भोजन करा, स्वयं अनाहार रहकर सोनेके बहाने अपने घरके दरवाजे बन्दकर लेट रही। सचमुच सोनेके लिये नहीं, चिन्ताके कारण।

तुम दार्शनिक और वैज्ञानिक लोग अपना अभिमत थोड़ी देरके लिये परित्यागकर मेरी एक मोटी बात सुन लो। सुमति नामकी देवकन्या और कुमति नामकी एक राक्षसी दोनों हमेशा मनुष्यके हृदयमें रहती हैं। साथ ही सदा आपसमें लड़ा करती हैं। जैसे दो बाघिने मरी हुई गौ के लिये आपसमें लड़ती हैं, जैसे स्यारने मृत देहके लिये विवाद करती है, यह दोनों जीवित मनुष्यको पाकर वैसा ही आचरण करती हैं। आज सोनेवाले कमरेमें रोहिणीको पाकर दोनोंका वैसा ही घोर विवाद आरम्भ हुआ।

सुमति कहती थी,—"ऐसे आदमीका भी भला कहीं सर्वनाश किया जाता है?"

कुमति—बिल तो हरलालको दिया नहीं, सर्वनाश कैसे किया ?

सुमति—कृष्णकान्तका बिल कृष्णकान्तको लौटा दो।

कुमति—वाह ! कृष्णकान्त जब मुझसे पूछेंगे,—"यह बिल तुमने कहां पाया, और मेरे दराजमें दूसरा एक जाली बिल कहाँसे आया," तो मैं क्या कहूंगी ? कैसी मजेकी बात है ! काकाको और मुझे दोनोंको जेल जानेके लिये कहते हो ?

सुमति--तो क्यों नहीं सारी बातें गोविन्दलालके सामने कहकर उनके पैरपर रोकर गिरती ? वह दयालु हैं, अवश्य हमारी रक्षा करेंगे।

कुमति—वही बात हुई। लेकिन गोविन्दलालको तो सारी बातें खोलके कृष्णकान्तके सामने बतानी पड़ेंगी, नहीं तो बिलकी बदली कैसी होगी। कृष्णकान्त यदि थानेमें दे दें, तो गोविन्दलाल हमें कैसे बचा सकते हैं ? बल्कि एक दूसरा परामर्श है। अभी चुपचाप बैठो—पहले कृष्णकान्त मरें—इसके बाद तुम्हारे परामर्श के अनुसार गोविन्दलालके पास जाकर रोते हुए कँतोंपर गिर पड़ूँगी। तब उन्हें बिल भी दूंगी।

सुमति—उसमें देना व्यर्थ होगा। जो बिल कृष्णकान्तके घरमें पाया जायेगा, वही सच्चा समझकर ग्रहण किया जा सकेगा। गोविन्दलाल जो बिल निकालेंगे, उसपर जाली होनेका अपवाद आ सकेगा।

कुमति—फिर चुपचाप बैठे—जो होना था, सो हो गया।

अतः सुमति चुप रह गयी। उसकी पराजय हो गयी। तब दोनों ने आपसे सन्धिकर सखीरूपमें एक कार्यमें प्रवृत्ति हुई। दोनोंने

उसी वापीतीर विराजित, चन्द्रलोक प्रतिभासित, चम्पकदाम विनिर्मित देवमूर्तिको सामने लाकर, रोहिणीके मानसचक्षुके सामने उपस्थित किया। रोहिणी उसे देखने लगी, देखते-देखते रोने लगी। रोहिणी उस रात सोयी नहीं।

—०*०—

नवां परिच्छेद

उसी दिनसे रोज कलसी बगलमें दबाकर रोहिणी वारुणी पुष्करिणीसे जल लानेके लिये जाती हैं। नित्य कोयल बोलती है— नित्य वही गोविन्दलालको पुष्पोद्यानमें देखती है, नित्य सुमति-कुमतिमें सन्धि-विग्रह दोनों ही घटनाएं घटती हैं। सुमति-कुमतिका वाद-विवाद मनुष्यके लिये सहनीय है; किन्तु सुमति-कुमतिका सद्भाव बहुत ही भयावह है। उस समय सुमति कुमतिका रूप धारण करती है और कुमति सुमतिका। उस समय सुमति कौन है और कुमति कौन है, पहचाना जा नहीं सकता। लोग सुमति समझकर कुमतिके वशमें हो जाते हैं।

जो हो, कुमति हो चाहे सुमति हो, गोविन्दलालका रूप रोहिणीके हृदयपटपर बड़े गहड़े रङ्गमें रङ्गने लगा। अन्धकार चित्रपट— उज्ज्वल चित्र। दिनपर चित्र उज्ज्वलतर होने लगा और चित्रपटपर घना अन्धकार आने लगा। उस समय संसार उसकी आँखोंमें—जाने दो, पुरानी बातें उठानेसे फायदा नहीं। रोहिणी सहसा गोविन्दलालके प्रति मन-ही-मन छिपे हुए प्रणदासक्त हो गयी।

मैं नहीं बता सकता कि इतने दिनों बाद उसकी ऐसी दशा क्यों हुई—समझा भी नहीं सकता। यही रोहिणी, इन्हीं गोविन्दलालको बचपनसे देखती आती है—कभी उनके पति रोहिणीका चित्त आकृष्ट नहीं हुआ। आज एकाएक ऐसा क्यों! नहीं जानता। जो-जो घटनाएं हुईं, उन्हें बता चुका हूं। उस पाजी कोयलकी कूक, वह तालाव किनारेका रोना, वह समय, वह स्थान, वह छिन्नपात, उसपर गोविन्दलालकी असामयिक करुणा–फिर गोविन्दलालके प्रति रोहिणीका निरपराध अन्यायाचरण—इन सब बातोंसे कुछ दिनोंसे गोविन्दलाल रोहिणीके मनमें स्थान पा रहे हैं। उससे क्या होगा या न होगा, मैं नहीं जानता, जो घटनाएं घटी हैं, मैं वैसा ही लिख रहा हूं।

रोहिणी बड़ी बुद्धिमती है, मनमें समझ गयी कि विनाशकारी बातें हैं। यदि गोविन्दलाल अणुमात्र भी जान पाये तो कभी अपनी छायातक पड़ने न देगा। शायद ग्रामसे बाहर निकलवा भी दे। किसीके सामने यह बातें कहनेकी भी नहीं हैं। रोहिणीने बड़े यत्नसे मनकी बात मनमें ही छिपा रखी।

लेकिन छिपायी हुई आग जैसे भीतरसे जलाती आती है, रोहिणीके चित्तमें भी वही होने लगा। जीवनका भार बहन करना रोहिणीके लिये कठिन हो गया। मन-ही-मन रोहिणी रात-दिन मृत्यु कामना करने लगी।

कितने ही लोग मन-ही-मन मृत्यु कामना करते हैं, इसकी गिनती कौन रख सकता है! हमारा तो ख्याल है कि जो सुखी हैं

और जो दुखी हैं, उनमें अनेक काम मनोवाक्यसे मृत्यु कामना करते हैं। इस पृथ्वीका सुख, सुख नहीं है, सुख भी दुखमय है। किसी भी सुखसे सुख नहीं है, कोई सुख सम्पूर्ण नहीं—इसी लिये अनेक सुखी जन मृत्यु कामना करते हैं। फिर, दुखी तो अपने दुखमय जीवनके बोधको न सह सकनेके कारण मरना चाहते ही हैं।

मौतको बुलाते तो हैं, लेकिन किसके सामने मौत आती है? बुलानेसे मौत नहीं आती। जो सुखी हैं, जो मरना नहीं चाहते, जो सुन्दर हैं, जो युवक हैं, जो आशावान हैं, उनकी आंखोंमें पृथ्वी नन्दनकानन है, मौत उन्हींके सामने आती है। रोहिणी जैसियोंके सामने नहीं आती। इधर मनुष्यकी शक्ति भी ऐसी अल्प है, कि मृत्युको वह बुला नहीं सकता। एक छोटी सुईके गड़ानेसे और आधा बूंद दवाके गलेसे उतारनेसे ही यह नश्वर जीवन समाप्त हो सकता है, यह चंचल जलबिम्ब काल-सागरमें मिल जा सकता है—किन्तु आन्तरिक मृत्यु कामना करनेपर भी कोई इच्छापूर्वक सुई गड़ा नहीं सकता और न तो आधा बूंद दवाका ही गलेसे उतार सकता है। कोई-कोई विरले ऐसा कर सकते हैं, लेकिन रोहिणी उनमें नहीं है—रोहिणी वह कर न सकी।

लेकिन एक बातके लिए रोहिणी कृतसङ्कल्प हुई—जाली बिल चलने न पायेगा। इसका एक सहज उपाय था—कृष्णकान्तसे कहना या किसीके द्वारा कहलाना कि आपका बिल चोरी चला गया है-दराज खोलकर जो बिल है, उसे पढ़के देख लीजिये। रोहिणीने जो चोरी की, इसे भी प्रकट करनेकी जरूरत नहीं—किसीने भी चोरी

की, कृष्णकान्तके मनमें एकबार सन्देह होते ही वह सन्दूक खोलकर बिल पढ़ेंगे—यह जाली बिल देखते ही वह नया बिल तैयार करेंगे। गोविन्दलालकी सम्पत्तिकी रक्षा भी होगी और कोई जान भी न पायेगा कि किसने बिल चोरी की। किन्तु इसमें एक विपद है- कृष्णकान्त जाली बिल पढ़ते ही जान जायेगा कि यह भी ब्रह्मानन्दके हाथका लिखा हुआ है—उस समय ब्रह्मानन्द महाविपदमें पड़ सकते हैं। अतएव दराजमें जो जाली बिल है, यह किसी तरह भी प्रकट किया जा नहीं सकता।

अतएव हरलालके लोभमें रोहिणीने जो गोविन्दलालका यारी अभिष्ट कर रखा था, उसके प्रतीकारके लिए विशेष चिन्तित होकर भी चाचाकी रक्षाके ख्यालसे कुछ भी हो न सका। अतएव उसने स्थिर किया कि जिस तरह असली बिल चोरी करनेके लिए उसने वहां जाली बिल रखा था, उसी तरह जाली बिल चोरीकर असली बिल वहां रखना होगा।

एकान्त रातमें सुन्दरी रोहिणी असली बिल अपने पास छिपाकर बड़ा साहस बटोरकर अकेली कृष्णकान्त रायकी कोठरीमें पहुंचनेके लिए चली। खिड़की-दरबाजे सब बन्द थे, सदरफाटक पर दरवान चारपाईपर सोया हुआ अधमुंहे नेत्रसे फंसे हुए गलेसे भीलू रागनीका प्रतृश्राद्ध कर रहा था, रोहिणी वहीं उपस्थित हुई। दरवानने पूछा—"कौन है ?" रोहिणीने जवाब दिया—"सखी" सखी घरकी एक युवती मजदूरनी है, अतः दरवान फिर न कुछ न बोला। रोहिणी निर्विघ्न प्रवेशकर पूर्वपरिचित राहसे कृष्णकान्त रायकी

कोठरीके पास पहुंची। मकान सुरक्षित समझकर कृष्णकान्तरायके कमरेका दरवाजा बन्द होता न था। प्रवेशके समय कान लगाकर रोहिणीने सुना कि कृष्णकान्त रायकी नाक बिना बाधाके गर्जन कर रही है। तब धीरे-धीरे बिल चोर बिना शब्द दिये कमरेमें घुसा। प्रवेश करते ही पहले उसने दिया बुझा दिया। बादमें पहले की तरह उसने चाबीकी चोरी की तथा पहले की तरह ही अन्धेरेमें लक्ष्यकर दराज खोला।

रोहिणी बहुत ही सावधान थी, हाथ बड़ी कोमलतासे चल रहे थे। फिर भी चाबी घुमानेमें 'खस' करके एक शब्द हुआ। उसी शब्दमें कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी।

कृष्णकान्त ठीक समझ न सके कि कैसा शब्द हुआ। कोई आवाज उन्होंने न की; कान लगाकर सुनने लगे।

रोहिणीने भी सुना कि नासिकागर्जनका शब्द बन्द हो गया है। वह समझ गयी कि कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी है। रोहिणी भी निःशब्द स्थिर हो रही।

कृष्णकान्त बोले,—"कौन है?" किसीने उत्तर न दिया।

वह रोहिणी अब न रही। इस समय रोहिणी शीर्ण, क्लिष्ट और विवश थी, मालूम होता है बहुत डर गयी थी। थोड़ा-थोड़ा श्वासका शब्द हो रहा था। श्वास-प्रश्वासके शब्द कृष्णकान्तके कानमें गये।

कृष्णकान्तने हरिको कई आवाज दी। रोहिणीने सोचा कि

इस समय मैं भाग सकती हूं, किन्तु ऐसा होनेपर कृष्णकान्तका प्रतीकार नहीं होता। रोहिणीने मन-ही-मन सोचा, "दुस्कर्म के लिये उस दिन जैसा साहस किया था, आज सत्कर्मके लिये वह क्यों न करूंगी? गिरफ्तार हूंगी, हो जाऊं।" रोहिणी भागी नहीं।

कृष्णकान्तने कई बार हरिको बुलाकर कोई उत्तर न पाया। हरि कहीं और सुखकी खोजमें गया हुआ था—शीघ्र ही आयेगा। तब कृष्णकान्तने तकियेके नीचेसे सलाई निकालकर अपने हाथों जलाया। सलाईकी रोशनीमें उन्होंने देखा कि घरमें दराजके पास एक स्त्री खड़ी है।

सलाईसे कृष्णकान्तने दिया बाला। स्त्रीको सम्बोधन करते हुए उन्होंने पूछा,—"तुम कौन हो?"

रोहिणी कृष्णकान्तके पास चली गई। फिर बोली,—"मैं रोहिणी हूं।"

कृष्णकान्त बहुत विस्मित हुए। बोले,—"इतनी रातको अँधेरेमें यहाँ क्या कर रही थी?"

रोहिणीने जवाब दिया,—"चोरी कर रही थी।"

कृष्ण०—मजाक छोड़ो। इस अवस्थामें मैं तुम्हें क्यों पाता हूं, कहो? तुम चोरी करने आयी हो, इसपर सहसा मुझे विश्वास नहीं होता। किन्तु चोरोंकी अवस्थामें ही मैं तुम्हें देख रहा हूं।

रोहिणी बोली,—"तब मैं जो करने आई हूँ, उसे आपके सामने ही करती हूं, देखिये। इसके बाद मेरे लिये जो उचित

व्यवहार हो, सो करेंगे। मैं पकड़ गयी हूं; भाग न सकूंगी। न भागूंगी।"

यह कहकर रोहिणी दराजके पास लौट आई और उसने खींचकर दराज खोला। उसके अन्दरसे जाली बिल बाहर निकालकर असली बिल उसकी जगह रख दिया। इसके बाद उसने जाली बिल टुकड़े-टुकड़ेकर फाड़ फेंका।

"हाँ-हाँ; यह क्या फाड़ती हो? देखें-देखें" कहते हुए कृष्णकान्त चीख पड़े। किन्तु उनके चीखते-चीखते रोहिणीने उसे टुकड़े-टुकड़े किये हुए बिलको अग्निके समर्पणकर भस्म कर दिया।

कृष्णकान्तने क्रोधसे आँखें लालकर कहा,—"यह क्या जलाया?"

रोहिणी—एक नकली बिल।

कृष्णकान्त सिहर उठे। बोले,—"बिल! बिल! मेरा बिल कहाँ है?"

रोहिणी—आपका बिल दराजके अन्दर है, आप देखिये न?

इस युवतीकी स्थिरता-निश्चिन्तता देखकर कृष्णकान्त विस्मित होने लगे। उन्होंने सोचा,—"कोई देवता छल करनेके लिये तो नहीं आये हैं।"

इसके उपरान्त कृष्णकान्तने दराज खोलकर देखा, उसमें एक बिल रखा हुआ था। उन्होंने उसे निकाला, चश्मा बाहर किया; फिर उसे पढ़कर देखा कि वस्तुतः यह उनका असली बिल है। आश्चर्यके साथ उन्होंने फिर पूछा,—"तो तुमने जलाया क्या?"

रो०—एक जाली विल।

कृ०—जाली बिल ? जाली बिल किसने बनाया ? तुमने उसे वहां कहाँ पाया ?

रो०—किसने बनाया, मैं बता नहीं सकती; किन्तु उसे मैंने दराजके अन्दर पाया है।

कृ०—तुमने किस तरह पता पाया कि दराजके भीतर जाली बिल है ?

रो०—यह मैं बता नहीं सकती।

कृष्णकान्त कुछ देर तक सोचते रहे। अन्तमें उन्होंने कहा,—"यदि मैं तुम जैसी क्षुद्र बुद्धिकी स्त्रीके भीतर प्रवेश कर न पाया तो इतनी सम्पत्तिकी रक्षा करके मैंने क्या किया ? यह जाली बिल हरलालका तैयार किया हुआ है। मालूम होता है, तुम उससे घूस लेकर असली बिल लेने और जाली बिल रखनेके लिये आयी थी। इसके बाद पकड़ जानेके भयसे जाली बिल फाड़कर जला दिया है। ठीक बात है या नहीं ?"

रो०—ऐसी बात नहीं है।

कृ०—यदि ऐसा नहीं है, तो क्या है ?

रो०—मैं कुछ न नहीं बताऊँगी। मैंने आपके घरमें चोरकी तरह प्रवेश किया है, आप जो चाहे करें।

कृ०—इसमें सन्देह नहीं कि तुम नीच कर्म करने आयी थी। नहीं तो चोरोंकी तरह क्यों आती ? तुम्हें उचित दण्ड अवश्य दूँगा। तुम्हें पुलिसमें न दूंगा, लेकिन कल माथा मुड़ाकर और

कालिख पुतवाकर तुम्हें ग्रामके बाहर करा दूंगा। आज तुम कैदमें रहो।

रोहिणी उस रात बन्द रही।

—०*०—

दसवां परिच्छेद

उसी रातके सवेरे अपने शयनगृहके खुले दरवाजेके सामने गोविन्दलाल खड़े हैं। एकदम सवेरा नहीं हुआ है, कुछ बाकी है। अभी भी गृहप्राङ्गणके कामनीकुंजमें कोकिलकी पहली पुकार नहीं पड़ी थी। जाँतेकी गीत आरम्भ हो गयी थी। उषाकालकी ठण्डी वायु बह रही है—गोविन्दलाल खिड़की खोलकर पीछे उस उद्यानमें फूले हुए पुष्प मल्लिका-गन्धराज-कुटजके सौरभसे सनी शीतल प्रातःकालीन वायु-सेवनके लिये वहां खड़े हुए। इसी समय उनके पास दुबली-पतली एक बालिका आ खड़ी हुई।

गोविन्दलालने कहा,—फिर तुम यहां क्यों ?"

बालिकाने भी जवाब दिया,—"तुम यहां क्यों ?" कहना न होगा, यही बालिका गोविन्दलालकी स्त्री है।

गोविन्द०—मैं जरा हवा खानेके लिये आया, यह भी तुमसे सहा न गया ?

बालिकाने कहा,—"अभी क्यों ? बार बार खाँय खाँय ? घरकी चीजें खाकर मन नहीं भरता, उसपर बाग-बगीचोंकी हवा खानेके लिये ताक लगा रहे हैं।

गो०—घरकी चीजें मैंने कौनसी खाईं ?

"क्यों ? अभी तो मुझसे गाली खा चुके हो ? "

गो०—तुम नहीं जानती, भोमर ! गाली खानेसे यदि बंगाली लड़कोंका पेट भरता तो इस देशके लोग बदहजमीसे परिवारसहित मर गये होते। वह चीज तो बड़ी आसानीसे बंगालियों के पेटमें हजम हो जाती है। भोमर ! एक बार तुम अपनी नथिया हिलाओ तो, मैं देखूं।

गोविन्दलालकी स्त्रीका वास्तविक नाम कृष्णमोहिनी, कृष्ण-कामिनी या अनंगमंजरी कुछ ऐसा ही उसके माता-पिताने रखा था, इतिहासकारोंने लिखा नहीं। अनुपयुक्त होनेके कारण वह नाम लुप्त हो गया था। उसका आदरका नाम 'भ्रमर' या 'भोमर' है। सार्थकताके कारण यही नाम प्रचलित हो गया। भोमर सांवली है।

भोमरने नथिया हिलानेमें विशेष आपत्ति दिखाकर अपनी नथिया उतारकर एक खुंटीपर टांग दी और गोविन्दलालकी नाक पकड़कर उसने हिला दिया। इसके बाद गोविन्दलालका चेहरा देखती हुई वह मृदु हंसीसे हंसने लगी,—मन-ही-मन समझती है कि मैंने बड़ा भारी काम किया है। गोविन्दलाल भी उसके चेहरेकी तरफ देखते हुए अतृप्त आंखोंसे देखते रह गये। ऐसे ही समय पूर्वगगनमें भगवान सूर्यकी प्रथम रश्मि फूटी। उसकी हलकी रोशनीसे भूमण्डल आलोकित हुआ। वह मधुर ज्योति पूर्वाभिमुखी भ्रमरके मुखमण्डलपर आकर पड़ी। उस उज्ज्वल, परिष्कार कोमल मुखकी श्यामछविपर कोमल प्रभातालोक पड़कर, बड़ी-बड़ी लीलाचंचल आँखोंको चमकाने लगा—

उसका स्निग्ध उज्ज्वल गण्ड प्रभासित हो उठा। हंसी-कटाक्षमें, उस रोहिणीमें, गोविन्दलाल के आदरमें और प्रभात वायुमें मिल गयी।

इसी समय सोकर उठी हुई मजदूरनियोंके आवाससे हलचलकी आवाज सुनाई दी। इसके बात ही झाड़ू देने, बरतन माँजने पानी छिड़कने आई कि सप्-सप्, घप्-घप् ए झन्-झन्, खन्-खन्, आवाजें होने लगीं। अकस्मात् वह शब्द बन्द होकर-अरे राम। क्या होगा! क्या किया? कैसी शैतान है!" बीच-बीचमें हंसी-टिटकारी आदि हलचलके शब्द सुनाई दिये। सुनकर भ्रमर बाहर गयी।

मजदूरनियां भ्रमरसे बहुत नहीं डरतीं, इसके कई कारण हैं। एक तो अभी भ्रमर स्वयं लड़की है, दूसरे स्वयं मालिका नहीं है, मालिका अभी खास ननद है, उसपर भ्रमर अपनी हंसीमें जितनी पटु है, उतनी शासनमें नहीं। भ्रमरको देखकर मजदूरनियाँ और चढ़-बढ़ गयीं।

न० १—अरे सुना, बहूजी?

न० २—ऐसी सर्वनाशी बात किसीने कभी सुनी न होगी।

न० ३—कैसा साहस है! हरामजादी को अभी झाड़ू लगाऊँगी।

न० ४—सिर्फ झाड़ू—बहूजी! कहो तो मैं उसकी नाक काट आऊँ।

न० ५—अरे राम! किसके पेटमें क्या है—कैसे जान पड़े भगवान!

भमरने हँसकर कहा,—"पहले बता तो सही क्या हुआ, फिर

जिसके जो मनमें आवे, करना न ! इसके बाद ही फिर वही हलचल होने लगा।

न० १ ने कहा,–सुना नहीं ? तमाम मुहल्लेमें शोर हो गया कि-

न० २ ने कहा,—बाघकी मांदमें स्यारनी !

न० ३—हरमजादीको झाड़ू मारकर जहर उतार दूंगी।

न० ४—क्या कहें, बहूजी! बौना होकर चाँद छूती है।

न० ५—भींगी बिल्ली पहचान नहीं पड़ती। गलेमें फांसी लगा दो, फांसी ?

भ्रमरने कहा,—"तुमलोगोंके।"

इसपर सब मजदूरनियाँ एक स्वरसे बोल उठीं,—"हमारा क्या कसूर है ? हमलोगोंने क्या किया ? समझ गयी, समझ गयी। दोष चाहे जो करे—माके पड़े हमलोगोंके। हमलोगोंको और उपाय नहीं है, क्या करें।

यह बात समाप्तकर उसमें की दो-एक आंखोंपर कपड़ा लगाकर लगी रोने। एकको मरे हुए लड़केकी तरह दुःख याद आया। भ्रमर बहुत चंचल हो उठी—लेकिन अपनी हँसी भी रोक न सकी। बोली,–"तुमलोगोंके गलेमें फांसी इसीलिये, कि तुम सब अभीतक यह न बता सकी कि क्या हुआ है, बात क्या है ?

इसपर चारों तरफसे फिर चार-पांच गलेकी आवाज सुनाई पड़ी। बड़े कष्टसे भ्रमर उस अनन्त वक्तृतासे समझ पायी कि मालिककी कोठरीमें रातको चोरी हुई है। किसीने कहा, चोरी नहीं

डकैती, किसीने कहा, सेंध, किसीने कहा, नहीं, चार-पांच चोरोंने आकर लाख रुपयेके कम्पनीके कागज ले लिये।

भ्रमरने कहा,-"तब ? किस हरामजादीकी बात काट रही थी ?

न० १—रोहिणी ब्राह्मणी की—और किसकी ?

न० २—वही हरमजादी तो सर्वनाशकी जड़ है।

न० ३—वही तो डाकुओंका दल लेकर आयी थी।

न० ४—जैसा कर्म है—वैसा ही फल।

न० ५—अब मरे, जेलमें जाकर।

भ्रमरने पूछा,-"तुमलोगोंने कैसे जाना कि रोहिणी चोरी करने के लिये आयी थी।

"क्यों ? वह पकड़ा गई है। कचहरीकी जेलमें बन्द है।

भ्रमरने जो कुछ सुना, गोविन्दलालसे जाकर कहा। गोविन्दलालने विचारकर माथा हिलाया।

भ्रमर—माथा क्यों हिलाया ?

गो०—मुझे विश्वास नहीं कि रोहिणी चोरी करने आयी थी। तुम्हें विश्वास होता है ?

भ्रमरने कहा,—"नहीं।"

गो०—बताओ तो सही, क्यों नहीं विश्वास होता ?

भ्रमर—बताओ तो, तुम क्यों नहीं विश्वास करते ?

गो०—वह बादमें बताऊँगा। पहले तुम बोलो, विश्वास क्यों नहीं होता।

भ्रमर—पहले तुम बताओ।

गोविन्दलाल हँसे। बोले,—"पहले तुम।"

भ्रमर—क्यों पहले बतावें ?

गो०—मैं सुनना चाहता हूं।

भ्रमर—सच बतायें ?

गो०—हां; सच कहो।

भ्रमर कहनेको उद्यत होकर भी कह न सकी। लज्जासे नीचा मुंह किये खड़ी रही।

गोविन्दलाल समझ गये। पहले ही समझ चुके थे। पहले समझकर भी इतना जबरदस्ती पूछना चाहते थे। रोहिणी निरपराधिनी है, भ्रमरको इसका दृढ़ विश्वास था। अपने अस्तित्व में जितना विश्वास हो सकता है, भ्रमरको इसकी निर्दोषितामें उतना ही विश्वास था। किन्तु उस विश्वासका और कोई कारण न था—केवल गोविन्दलाल कहते हैं कि "मेरा विश्वास है कि वह निर्दोषी है।" गोविन्दलालका विश्वास ही भ्रमरका विश्वास है। गोविन्दलाल इसे समझ गये। वह भ्रमरको पहचानते हैं इसलिये काली होनेपर भी उससे प्रेम करते हैं।

हंसकर गोविन्दलालने कहा,—"मैं कहता हूं, क्यों तुम रोहिणी की तरह हो ?"

भ्रमर—क्यों !

गो०—वह तुम्हें काली न बताकर उज्ज्वल श्याम वर्ण बताती है।

भ्रमरने क्रोधसे कुटिल भौहें कर कहा,—"जाओ।"

गोविन्दलालने कहा,—"जायें ?" यह कहकर गोविन्दलाल उठकर चले।

भ्रमरने कपड़ा पकड़कर कहा,—'कहां जाते हो ?'

गो०—अच्छा बताओ, कहां जाता हूं ?

भ्र०—अबकी बता दूंगी।

गो०—बताओ ?

भ्र०—रोहिणी को बचाने।

"ठीक है।" कहकर गोविन्दलालने भ्रमरका मुंह चूम लिया। परदुःखकातरका हृदय परदुःखकातर ही समझता है। इसीलिये गोविन्दलालने भ्रमरका मुंह चूम लिया।

—:oo:—

ग्यारहवां परिच्छेद

गोविन्दलाल कृष्णकान्त रायकी सदर कचहरी में जा पहुंचे!

कृष्णकान्त सवेरे ही कचहरी में आ बैठे थे। गद्दीपर मसनद लगा कर बैठे हुए वह सोने की चिन्तनमें चढ़ी अम्बरी तमाखूका आनन्द लेते हुए मर्त्यलोक में स्वर्गका अनुकरण कर रहे थे। एक तरफ राशि-राशि चिट्ठियोंका बँधा बण्डल, खाता, बही, जमाखर्च, रोकड़ बही, आदि-आदि, दूसरी तरफ नायब, गुमास्ता, कारकून, तहसीलदार, अमीन, प्रजा आदि के लोग थे। सामने शिर नीचा किये हुई घूँघट डाले रोहिणी थी।

गोविन्दलाल बड़े प्यारे भतीजे थे। प्रवेश करते ही उन्होंने पूछा,—"क्या हुआ है, तायाजी!"

उनका कण्ठ स्वर सुन, घूंघट निकाले हुई रोहिणी ने भीतर

से ही उनपर एक कटाक्ष फेंका। कृष्णकान्तने क्या उत्तर दिया, इस पर गोविन्दलालने विशेष ध्यान न दिया,—सोचा, इस कटाक्षके क्या माने ! अन्त में उन्होंने स्थिर किया—इस कातर कटाक्ष का अर्थ भिक्षा है।"

कैसी भिक्षा ? गोविन्दलालने सोचा कि दुःख की भिक्षा और क्या ? विपद से उद्धारके लिये। उस तालावकी सीढ़ी पर खड़े होकर उनसे जो बातें हुईं, वह सब याद आयीं। गोविन्दलालने रोहिणी से कहा था,—"यदि तुम्हें किसी बात की तकलीफ हो तो आज-कल मुझसे कहना।" आज तो रोहिणी पर कष्ट ही है, शायद वही इच्छा रोहिणी ने प्रकट की है।

गोविन्दलाल ने मन-ही-मन सोचा,—तुम्हारा मंगल कर सकूं, यही मेरी इच्छा है। क्योंकि देखता हूं कि इस संसार में तुम्हारा कोई सहायक नहीं है। लेकिन तुम जैसे आदमी के हाथ में पड़ी हो तुम्हारी रक्षा सहल नहीं है।" यह सब सोचते हुए गोविन्दलाल ने फिर कहा,—"क्या हुआ है, तायाजी !"

वृद्ध कृष्णकान्त ने एकबार आद्योपान्त सारी बातें गोविन्दलाल से कह सुनायी थीं, लेकिन गोविन्दलालने रोहिणीके कटाक्षकी व्याख्यामें भूलकर कुछ नहीं सुना। भतीजेने फिर पूछा,-"क्या हुआ है, तायाजी " !सुन कर वृद्धने मन-ही-मन सोचा है,-ठीक है। लड़का जान पड़ता है, हरामजादीके चन्द्रमुखके आगे सब भूल गया ! "अतः कृष्णकान्त ने फिर आद्योपान्त सारी बातें गोविन्दलालको बतायीं। समाप्त करते हुए बोले,—"यह सब उसी 'हरा' (हरलाल)

का पाजीपन है। मालूम होता है, यह हरामजादी उसे घूसमें रुपये पाकर जाली बिल रखने और असली बिल चोरी करने आयी थी। इसके बाद पकड़ जाने पर डरसे जाली बिल फाड़कर जला डाला।"

गो०—रोहिणी क्या कहती है ?

कृ०—वह क्या कहेगी ? कहती है, यह बात नहीं।

गोविन्दलालने रोहिणीकी तरफ देखकर कहा,—"यह बात नहीं तो क्या बात है, रोहिणी ?"

रोहिणी ने बिना शिर उठाये ही भरे गले से कहा,—"मैं आप लोगों के हाथ में पड़ गई हूं, जो करना हो, सो करिये। मैं और कुछ न कहूंगी।"

कृष्णकान्त बोले,—"देखा बदजातपन ?"

गोविन्दलालने मन-ही-मन सोचा, इस संसारमें सब लोग बदजात नहीं हैं। इसके अन्दर बदजाती छोड़कर और कुछ भी है। वह प्रकट रूपमें बोले,—"इसके लिये क्या हुक्म दिया है, आपने ? इसे क्या थानेमें भेजेंगे ?"

कृष्णकान्तने कहा—"मेरे सामने थाना-फौजदारी क्या है ? मैं ही थाना हूं; मैं ही मजिस्ट्रेट हूं और मैं ही जज हूं। खासकर इस नीच औरतको जेल भेजवाकर मेरा क्या पौरुष बढ़ेगा ?"

गोविन्दलाल ने पूछा—तो क्या करेंगे ?

कृ०—इसका सर मुड़वाकर कालिख पुतवाकर गांवके बाहर निकलवा दूंगा। मेरे इलाके में आने न पायेगी।

गोविन्दलालने फिर रोहिणी की तरफ मुखातिब होकर कहा, "क्या कहती हो, रोहिणी ?"

रोहिणी ने कहा,—"क्या हर्ज है ?"

गोविन्दलाल विस्मित हुए। कुछ सोचकर कृष्णकान्तसे बोले,—"मेरी एक प्रार्थना है।"

कृ०—क्या ?

गो०—इसे एकबार छोड़ दीजिये। मैं जमानत करता हूं—१० बजे फिर हाजिर कर दूंगा।

कृष्णकान्त ने सोचा,—"जान पड़ता है, वही बात है। बाबाजी की कुछ गरज है।" फिर प्रकट रूपमें बोले,—"कहां जायगी ? क्यों छोडूं ?"

गोविन्दलालने कहा,—"असली बात क्या है, मालूम करना आवश्यक है। इतने लोगों के सामने यह बात प्रकट न करेगी। इसे एकबार अन्दर ले जाकर पूछूंगा।"

कृष्णकान्तने सोचा,—"अपना माथा करोगे। आजकलके लड़के बड़े बेहया हो गये हैं। रहो बेटा। मैं भी तुम्हारे ऊपर एक चाल चलता हूं। "यह सोचकर कृष्णकान्त बोले,—"ठीक है।" यह कहकर कृष्णकान्त ने एक सिपाही से बोले,—"देख ! इसे संग में लेकर एक मजदूरनी के साथ मझली बहू के पास भेज तो दे। देख भागने न पावे।"

सिपाही रोहिणी को साथ लेकर चला गया। गोविन्दलाल भी

चले गये। कृष्णकान्त ने सोचा,—"दुर्गा! दुर्गा! लड़के को हो क्या गया है?"

—:**:—

बारहवां परिच्छेद

गोविन्दलालने अन्तःपुरमें आकर देखा कि भ्रमर रोहिणी को लेकर चुपचाप बैठी है। अच्छी बातें कहनेकी उसकी इच्छा है, लेकिन इस सम्बन्धमें बातें करने पर रोहिणी को रुलाई आती है, इसलिये वह रह नहीं सकती है। गोविन्दलाल को आया देखकर भ्रमरने जैसे कर्तव्य से छुट्टी पाया। शीघ्र ही दूर जाकर इसारेसे उसने गोविन्दलालको बुलाया। गोविन्दलाल भ्रमरके पास गये। भ्रमर ने गोविन्दलालसे चुपकेसे पूछा,—"रोहिणी यहां क्यों आयी है?"

गोविन्दलालने कहा,—"मैं एकान्तमें उससे पूछूँगा। इसके बाद उसके भाग्य में जो बदा होगा, वह होगा।"

भ्रमर—क्या पूछोगे?

गो०—उसके मनकी बात। मुझे अकेले छोड़ जाने में यदि डरती हो, तो, न हो आड़से खड़ी होकर सुनो।

भ्रमर बड़ी अप्रतिभ हुई। लज्जा से नीचा शिर किये, वह अंचल पकड़े भागी। एकदम रशोई घर में जा पहुंची। पीछेसे रशोईदारिन महराजिनकी चोटी पकड़ कर खींचते हुए भ्रमर ने कहा,—"महराजिन! रसोई करती हुई एक प्रेम-कहानी कहो न।"

इधर गोविन्दलालने रोहिणी से पूछा,-"क्या यह सब वृत्तान्त मुझसे खोलकर कहोगी ?"

कहनेके लिये रोहिणीका पेट फटा पड़ता था। किन्तु जो जाति जिन्दा चितापर चढ़ सकती है, रोहिणी भी उसी जातिकी-आर्य-कन्या है। बोली—मालिक से सारी बातें तो सुन ही चुके हैं।"

गो०—मालिक का कहना है कि तुम जाली बिल रखकर असली बिल चोरी करने गई थी। क्या यही बात है ?

रो०—नहीं, ऐसा नहीं है।

गो०—तब क्या ?

रो०—कहकर क्या होगा ?

गो०—तुम्हारा भला हो सकता है।

रो०—आप विश्वास करेंगे, तब तो ?

गो०—विश्वास योग्य बात होने से क्यों न विश्वास करूंगा ?

रो०—विश्वास योग्य बात नहीं है।

गो०—मेरे सामने क्या विश्वास योग्य है और क्या अविश्वास योग्य है, उसे मैं जानता हूं, तुम कैसे जानोगी ? मैं कभी-कभी अविश्वासयोग्य बातों पर भी विश्वास करता हूं।

रोहिणीने मन-ही-मन कहा,—'नहीं तो मैं तुम्हारे लिये मरने क्यों बैठी हूं ! जो हो मैं तो मरने बैठी ही हूं; लेकिन तुम्हारी एकबार परीक्षा करके देखूंगी।" प्रकट में बोली,—यह आपकी महिमा है। लेकिन आपसे यह दुःखकहानी कहकर ही क्या करूंगी !"

गो०—शायद मैं तुम्हारा कोई उपकार कर सकूं ।

रो०—क्या उपकार करेंगे ?

गोविन्दलालने सोचा,—"यह बेजोड़ है। जो हो, यह कातर है, इसे सहजमें ही परित्याग न करूंगा। "प्रकट बोले,-"हो सकेगा, तो मालिकसे प्रार्थना करूंगा। वह केवल तुम्हारा त्याग ही कर देंगे।

रो०—और यदि आप अनुरोध न करें, तो वे क्या करेंगे !

गो०—सुन तो चुकी हो।

रो०—मेरा सर मुंड़ा देंगे, कालिख पुतवा देंगे, देशसे बाहर निकलवा देंगे। इसमें भला बुरा कुछ भी तो देख पाती हूं। इस कलङ्कके बाद-देशके बाहर निकाल देनेमें ही भलाई है। मुझे निकाल बाहर न करने पर मैं स्वयं ही यह देश त्यागकर चली जाऊँगी। अब इस देशमें मुंह किस तरह दिखाऊंगी! कालिख पुतवाना कोई बड़ा दण्ड नहीं है-धोनेसे ही धुल जायगा। बाकी रहे यह बाल—'यह कह कर रोहिणीने एकबार अपने तरङ्गक्षुब्ध कृष्णतड़ाग-तुल्य तालोंके प्रति देखकर कहा,—"यह केश—आप कैंचीमें लगाइये, मैं बहूजीकी दरी बिनवानेके लिये इन सबको अभी काट देती हूं।"

गोविन्दलाल बहुत दुखी हुए। ठण्डी सांस खींचकर बोले,-समझ गया रोहिणी। कलङ्क ही तुम्हारा दण्ड है। उस दण्डसे न बच जानेपर, दूसरे दण्डके लिये तुम्हें आपत्ति नहीं है।

रोहिणी रो पड़ी। हृदय में गोविन्दलाल को लाखों धन्यवाद देने लगी। वह बोली, "यदि समझ गये हैं, तो मैं आपसे पूछती हूं, कि क्या इस कलङ्क दण्डसे आप मेरी रक्षा कर सकेंगे ?"

गोविन्दलालने कुछ देर बिचार कर कहा,—"कह नहीं सकता। असली बात सुन लेनेपर बता सकता हूं कि रक्षा कर सकूंगा या नहीं।"

रोहिणीने कहा,-"क्या पूछना चाहते हैं, पूछिये।

गो०—तुमने जो जलाया, वह क्या था।

रो०—जाली बिल।

गो०—कहां पाया था ?

रो०—मालिकके घरके दराज में।

गो०—जाली बिल वहां कैसे आया ?

रो०—मैं ही रख गयी थी। जिस दिन असली बिलकी लिखा-पढ़ी हुई, असली बिल चोरी कर जाली बिल रख गयी थी।

गो०—क्यों ! तुम्हें क्या प्रयोजन था ?

रो०—हरलालबाबू के अनुरोध से।

गोविन्दलालने पूछा,—"तब कल रातको फिर क्या करने आई थी ?"

रो०—असली बिल रखने और जाली बिल लेने।

गो०—क्यों ! जाली बिलमें क्या था ?

रो०—बड़े बाबूके हिस्सेमें बारह आना और आपके हिस्सेमें एक पाई।

गो०—फिर क्यों बिल बदलने आई ? मैंने तो कोई अनुरोध नहीं किया था ?

रोहिणी रोने लगी। बड़े कष्टसे रोना बन्दकर बोली,—नहीं

अनुरोध नहीं किया था; लेकिन जो मैंने इस जन्ममें कभी नहीं पाया और जिसे इस जन्ममें कभी पा भी न सकूंगी—आपने मुझे दिया है।

गो०—वह क्या रोहिणी ?

रो०—उसी वारुणी तालाबके किनारे; याद कीजिये।

गो०—क्या, रोहिणी ?

रो०—क्या ? इस जन्ममें मैं नहीं बता सकती—क्या। और कुछ न कहिये। इस रोग की दवा नहीं है-मेरी मुक्ति नहीं। मुझे जहर मिलता तो खा लेती। लेकिन वह आपके घरमें नहीं है। आप मेरा दूसरा उपकार कर नहीं सकते-लेकिन एक उपकार कर सकते है। एक बार छोड़ दीजिये—रो आऊं। इसके बाद यदि बची रह जाऊं तो न हो तो माथा मुड़ाकर, कालिख पोतकर देश निकाला कर सकते हैं।

गोविन्दलाल समझ गये। आईनेकी तरह उन्होंने रोहिणीको देख लिया। समझ गये कि जिस मंत्रसे भ्रमर मुग्ध है, यह भुजङ्गी भी उसी मंत्रसे मुग्ध हुई है। उन्हें प्रसन्नता भी न हुई—क्रोध भी न हुआ समुद्र-जैसा वह हृदय है, उसमें उद्वेलन होकर दयाका उफान उठा। उन्होंने कहा,-'रोहिणी ! मौत ही तुम्हारे लिये अच्छी होगी, लेकिन मरनेकी जरूरत नहीं। सब इस संसार में कामके लिये आये हैं—अपना-अपना काम बिना किये क्यों मरेंगे ?

गोविन्दलाल इधर-उधर करने लगे। रोहिणीने कहा—"कहिये न।"

गो०—तुम्हें यह देश त्यागकर चले जाना होगा।

रो०—क्यों ?

गो०··तुम-स्वयं ही तो कह रही थी कि इस देशका त्याग करना चाहती हो।

रो०—मैं लज्जावश कह रही थी, लेकिन आप क्यों कहते हैं ?

गो०—हमारी तुम्हारी मुलाकात न हो !

रोहिणीने देखा कि गोविन्दलाल सब समझ गये हैं। मन० ही-मन बड़ी अप्रतिम हुई। बड़ी सुखी हुई। वह अपने सारे दुःख भूल गयी। फिर उसकी जीनेकी इच्छा हुई। फिर उसकी देशमें रहनेकी वासना बलवती हुई। मनुष्य बहुत ही पराधीन है।

रोहिणीने कहा,–"मैं अभी जानेको राजी हूं, लेकिन कहां जाऊँ ?"

गो०—कलकत्ते। वहांके एक मित्रको मैं पत्र दूंगा। वह तुम्हारे लिये एक मकान खरीद देंगे। तुम्हारे रुपये न लगेंगे।

रो०—मेरे वृद्ध चाचाका क्या होगा ?

गो०—वह तुम्हारे साथ जायेंगे। अन्यथा तुम्हें कलकत्ते जानेको न कहता।

रो०—वहां कैसे दिन बिताऊंगी ?

गो०—मेरे मित्र तुम्हारे चाचा को कोई नौकरी दिला देंगे।

रो०—चाचा क्या देश त्यागनेको तैयार होंगे ?

गो०—तुम क्या इस घटनाके बाद उन्हें राजी न कर सकोगी ?

रो०—कर सकूंगी। लेकिन आपके ताया कैसे राजी होंगे? वह मुझे कैसे छोड़ेंगे?

गो०—मैं अनुरोध करूंगा।

रो०—ऐसी दशामें मुझे कलङ्क पर कलङ्क लगेगा। आपपर भी कुछ कलङ्क आयेगा।

गो०—ठीक है, तुम्हारे लिये मालिक के सामने भ्रमर अनुरोध करेगी। तुम अब भ्रमर की खोज करो। उसे यहां भेज कर स्वयं इस मकान में ही रहना। बुलानेसे तुम्हें पा सकूं।

रोहिणी सजल नयन गोविन्दलालको देखती हुई भ्रमरकी खोज में चली। इस तरह कलङ्कमें, बन्धनमें रोहिणी का प्रथम प्रणय-सम्भाषण हुआ।

—०*०—

तेरहवां परिच्छेद

भ्रमर किसी तरह भी श्वसुर से अनुरोध करने पर राजी न हुई। बड़ी लज्जा आती है, छिः!

अन्त में गोविन्दलाल स्वयं कृष्णकान्त के पास गये। भोजन के बाद उस समय कृष्णकान्त अर्द्ध शयनावस्था में फरशी का सटका हाथमें लिये हुये पीनक ले रहे थे। इधर उनकी नासिकाके आवाज में गमकके साथ और ताल-मूर्छनादि के सहित विविध रागरागिणी का अलाप हो रहा था। दूसरी तरफ उनका मन अहिफेन की कृपा से त्रिभुवनगामी अश्व पर आरूढ़ हो नाना स्थानोंमें घूम

रहा था। बुड्ढे के मन में भी रोहिणी का चन्द्रमुख जान पड़ता है, उदित हो चुका था,—चांद कहां नहीं उदित होता ? नहीं तो बुड्ढा अफीमकी झोंक में इन्द्राणी के कन्धोंमें मुंह क्यों छिपायेगा। कृष्णकान्त देख रहे हैं कि रोहिणी हठात् इन्द्रकी शची होकर महादेवकी गोशाला में सांड़ चोरी करने के लिये गयी हैं। नन्दी ने हाथ में त्रिशूल लिये हुये सांड़को खाना देने जाने के लिये उसे गिरफ्तार कर लिया है। देखते हैं कि रोहिणी के आलुलायित कुन्तल केशों को पकड़ कर खींचा-तानी कर रहे हैं और षड़ानन का मयूर उन बालोंको सर्प समझ कर निगलनेके लिये पहुंच गया है। ऐसे समय स्वयं षड़ानन मयूरका दौरात्म्य देखकर महादेवके सामने नालिस करने के लिये उपस्थित होकर पुकार रहे हैं,—तायाजी ?"

कृष्णकान्त विस्मित होकर सोचते हैं कि कार्तिक ने महादेव को किस सम्बंध से "ताया" कहकर बुलाया। ऐसे समय कार्तिक ने फिर बुलाया,—"तायाजी ?" कृष्णकान्तने अतीव विरक्त होकर कार्तिकेय के कान मल देने के लिये हाथ ऊपर उठाया। तब कृष्णकान्त के हाथ का फरशीका सटक छूटकर झन् से पान के डब्बे पर जा गिरा, पान का डब्बा भी झनझना कर पीकदान पर जा गिरा, तथा सटक, पानदान और पीकदान एक साथ भूतलशायी हुए। इस शब्द से कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी, तो उन्होंने आंखें खोलकर देखा कि वस्तुतः कार्तिकेय उपस्थित है। मूर्तिमान स्कंद वीरकी तरह गोविन्दलाल उनके सामने खड़े हैं—पुकार रहे हैं,—

"ताथाजी !" कृष्णकान्त हड़बड़ा कर उठ बैठे और पूछा,—"क्या है, बेटा ? गोविन्दलाल ?" बूढ़ा गोविंदलालको बहुत प्यार करता है।

गोविंदलाल कुछ सकुचा गये-बोले—"आप सोइये—मैं बहुत जरूरी काम से नहीं आया था।"

यह कहकर गोविन्दलालने पीकदान उठाकर सीधा किया, पान के डब्बे को उठा कर यथास्थान रखा और सटक उठाकर कृष्ण कांत के हाथ में पकड़ा दिया। लेकिन कृष्णकांत भी बड़ा कठिन बुड्ढा है—सहज में ही भूलनेवाला नहीं—मन-ही-मन कहने लगे "कुछ नहीं, छोकड़ा फिर उसी चंद्रमुखी की बात लेकर आया है। "प्रकट रूप में बोले,—"नहीं मेरी नींद हो गयी-अब न सोऊंगा।

गोविंदलाल बड़े विपद् में पड़े। रोहिणीकी बात उन्हें कृष्ण-कांत से कहने में सवेरे लज्जा मालूम नहीं हुई थी—-इस समय कुछ लज्जा मालूम होने लगी—-बात कहते-कहते भी नहीं कह सके। रोहिणीसे तालाब किनारे जो बातें हुई थीं, क्या इसी कारण लज्जा है ?

बुड्ढा तमाशा देखने लगा। गोविन्दलाल कोई बात उठाते नहीं है, यह देखकर उन्होंने स्वयं जमींदारी बात उठायी—-जमीं-दारी के बाद सांसारिक बातें, सांसारिक बातों के बाद मुकदमेकी बातें, लेकिन रोहिणीकी बात उन्होंने नहीं उठायी। गोविन्द-लाल किसी तरह भी रोहिणी की बात उठा न सके। कृष्णकान्त मन-ही-मन खूब हँसे। बुड्ढा बड़ा दुष्ट है।

अन्तमें गोविन्दलाल लौट रहे थे, तब कृष्णकान्त ने अपने

प्रियतम भतीजे को फिर बुलाकर कहा,—"सवेरे जिस हरामजादी की तुमने जमानत की थी, उसने कुछ बताया ?"

अब गोविन्दलालने शह पाकर रोहिणी ने जो-जो कहा था, सब संक्षेप में कह डाला। वारुणी तालाब के बातें छिपा गये। सुनकर कृष्णकांतने कहा, "अब उसके लिये तुम्हारी क्या करने की इच्छा है ?"

गोविन्दलालने लज्जित होकर कहा,—"आपकी जो इच्छा होगी वही मेरी इच्छा भी है।"

कृष्णकांतने मन-ही-मन हँसते हुए, मुंह पर कुछ भी हंसी का लक्षण प्रकट न कर कहा, "मैं उसकी बातोंका विश्वास नहीं करता। उसका माथा मुड़वाकर, कालिख पुतवाकर देश के बाहर निकलवा दो---क्या कहते हो ?"

गोविन्दलाल चुप रह गये। तब दुष्ट बुड्ढे ने कहा, "और यदि तुम समझो कि उसका दोष नहीं है, तो छोड़ दो।"

गोविन्दलालने सांस छोड़कर बुड्ढे के हाथ से छुट्टी पाई।

—०✻०—

चौदहवां परिच्छेद

रोहिणी गोविन्दलालकी आज्ञा के अनुसार चाचा के साथ विदेश जाने के लिये बन्दोबस्त करने आयी। चाचा से इस बारे में कुछ न कहकर वह बीच कमरे में बैठकर लगी रोने।

"यह हरिद्राग्राम छोड़कर मुझसे जाते न बनेगा—बिना देखे

मर जाऊंगी। मेरे कलकत्ते चले जाने पर गोविन्दलालको तो देख न सकूंगी। मैं न जाऊंगी। यह हरिद्राग्राम ही मेरा स्वर्ग है, यहां गोविन्दलालका मंदिर है! यह हरिद्राग्राम ही मेरा श्मशान है, यहीं मैं जलकर मरूंगी। श्मशान में मरने न पाऊं, ऐसा भाग्य भी है! मैं यदि हरिद्राग्राम छोड़कर न जाऊं तो मेरा कोई क्या करेगा? कृष्णकान्त मेरा माथा मुड़वाकर, कालिख पुतवाकर निकलवा देंगे? मैं फिर लौट आऊंगी। गोविन्दलाल नाराज होंगे। होंगे तो हों,—फिर भी उन्हें देखूंगी। मेरी आँखें तो न निकलवा लेंगे। मैं न जाऊंगी। कलकत्ते न जाऊंगी—कहीं न जाऊंगी जाऊंगी, तो यमराज के घर जाऊंगी। और कहीं नहीं।"

यह निश्चय कर कलमुँही रोहिणी उठकर, दरवाजा खोलकर फिर,—पतङ्ग वद्‌वह्नि मुखं विविक्षुः"—उसी गोविन्दलाल के पास चली। मन-ही-मन कहती हुई चली,—"हे जगदीश्वर, हे दीनानाथ, हे दुखीजन के एकमात्र सहाय! मैं बड़ी दुखिनी हूं, बड़े दुख में पड़ी हूं मेरी रक्षा करो। मेरी हृदयकी इस असह्य प्रेमाग्नि को बुझा दो अब अधिक मत जलाओ। मैं जिसे देखने जा रही हूं उसे जितनी बार देखूंगी उतनी बार मेरी असह्य यन्त्रणा अनंत सुख है। मैं विधवा हूं—मेरा धर्म गया—सुख गया—प्राण गया क्या प्रभु? क्या रखूं भगवान? हे देवता! हे दुर्गा! हे काली! हे जगन्नाथ! मुझे सुमति दो मेरे मनको स्थिर करो मैं यह यन्त्रणा अधिक सह नहीं पाती हूं।"

फिर भी वह स्फीत, हत, अपरिमित, प्रेमपरिपूर्ण हृदय स्थिर

न हुआ। कभी सोचती है जहर खा लूं; कभी सोचती है गोविन्द-लालका पैर पड़ कर दिल खोलकर सारी बातें कहूं, कभी सोचती है—भाग जाऊं, फिर सोचा वारुणी तालाब में डूब मरूं इसके बाद सोचा जलांजलि देकर गोविन्दलाल को छीनकर विदेश भाग जाऊं। इस तरह रोती हुई रोहिणी फिर गोविन्दलाल के पास पहुंची।

गोविन्दलालने पूछा, क्यों कलकत्ते जाना पक्का है न ?

रो०—नहीं।

गो०—यह क्या ? अभी तो मेरे सामने स्वीकार किया था ?

रो०—जा न सकूंगी।

गो०—मैं क्या कहूं जबर्दस्ती करने में मेरा अधिकार नहीं लेकिन जाने से अच्छा होता।

रो०—क्या अच्छा होता ?

गोविन्दलाल सिर नीचा कर रह गये। स्पष्ट बात कहनेवाले वह कौन होते हैं ?

रोहिणी आँखोंका आंसू छिपाकर पोंछती-पोंछती घर वापस चली गयी। गोविन्दलाल बहुत दुखी होकर विचारमें पड़ गये। ऐसे ही समय भ्रमर नाचती-कूदती वहां पहुंची, बोली,—"क्या सोच रहे हो ?"

रो०—तुम बताओ तो सही।

भ्रमर—मेरा काला रूप।

गो०—धत्।

भ्रमर घोररूपमें क्रोधित होकर बोली,—"वह क्या ! मेरा ख्याल

नहीं कर रहे थे। मुझे छोड़कर संसारमें तुम दूसरेका ख्याल कर सकते हो ?

गो०—क्यों नहीं है ? मैं दूसरेका ख्याल कर रहा हूं।

इसपर भ्रमरने गोविन्दलालके गलेमें लपटकर और मुंह चूमकर प्रेमसे विह्वल होकर मीठी-मीठी मुस्कुराहटसे मुस्कुराती हुई कहा,—दूसरे किसका ध्यान कर रहे, बताओ न ?

गो०—क्या होगा तुम्हें बताकर।

भ्र०—बताओ न ?

गो०—तुम नाराज होगी।

भ्र०—हूंगी तो हूंगी, तुम बताओ।

गो०—जाओ-जाओ, देखो तो सबका खाना पीना हो गया ?

भ्र०—अभी देखूंगी, बताओ वह कौन है ?

गो०—रोहिणीका ख्याल कर रहा था।

भ्र०—क्यों रोहिणीका ख्याल कर रहे थे ?

गो०—यह मैं क्या जानूं ?

भ्रमर—जानते हो, बताओ न !

गो०—आदमी आदमीका ख्याल नहीं करता ?

भ्र०—नहीं। जो जिसे प्रेम करता है, वही उसका ख्याल करता है, मैं तुम्हें प्यार करती हूं—तुम मुझे प्यार करते हो। मैं तुम्हें याद करती हूं, तुम मेरा ख्याल करते हो।

गो०—तो मैं रोहिणीको प्यार करता हूं।

भ्रमर—झूठी बात है। तुम मुझे प्यार करते हो—और किसीको

तुम्हें प्यार नहीं करना चाहिये,—क्यों रोहिणीको याद कर रहे थे, बताओ न ?

गो०—विधवाको मछली खानी चाहिये ?

भ्र०—नहीं ।

गो०—विधवाको मछली न खानी चाहिये, फिर भी, तारिणी की मां मछली क्यों खाती है ?

भ्रमर—वह मुंहजली है, जो न करना चाहिये, वही करती है ।

गो०—मैं भी मुंहजला हूं, जो न करना चाहिये, वही करता हूं । रोहिणीसे प्रेम करता हूं ।

तड़ाकसे गोविन्दलालके गाल पर भ्रमरने थप्पड़ लगाया । क्रोधसे लाल होकर वह बोली । "मैं श्रीमती भौमर दासी हूं—मेरे सामने झूठी बात ?"

गोविन्दलालने हार मान ली । भ्रमरके कन्धेपर हाथ रखकर उसके प्रफुल्ल नीलकमल सदृश माधुर्यमय चेहरेको अपने करपल्लवोंसे पकड़कर मीठे साथ ही गम्भीर कण्ठसे गोविन्दलालने कहा,—"झूठी ही बात है, भोमर ! मैं रोहिणीसे प्रेम नहीं करता । लेकिन रोहिणी मुझसे प्रेम करती है ।"

तीरकी तरह गोविन्दलालके हाथसे अपना मुंह छुड़ाकर भ्रमर दूर जा खड़ी हुई । हाँफते-हाँफते कहने लगी,—"अभागी कलमुही, बन्दरी मर जाय ! मर जाय ! मर जाय ! मर जाय !"

गोविन्दलालने कहा,—"अभी से इतनी गाली क्यों ? तुम्हारे

सात राज्यके धन एक मालिक को तो अभी उसने छीन नहीं लिया है।"

भ्रमरने कुछ अप्रतिम होकर कहा,—"देर ही क्या है—इतनी शक्ति है हरामजादीने तुम्हारे सामने कहा कैसे ?"

गो०—ठीक कहती हो, भोमर—यह कहना उसे उचित न था—यही मैं सोच रहा था। मैंने उसे यहांसे जाकर कलकत्ते रहनेके लिये कहा था, खर्च तक देनेके लिये तैयार था।

भ्र०—तब ?

गो०—तब भी वह राजी न हुई।

भ्र०—ठीक, मैं उसे एक परामर्श दे सकती हूं।

गो०—हां-हां, लेकिन वह परामर्श मैं सुनूंगा।

भ्र०—सुनो।

यह कहकर भ्रमरने, "क्षीरि, क्षीरि ! कहकर एक मजदूरनीको बुलाया।

इसपर क्षीरोदा—उर्फ क्षीरोदमणि-उर्फ क्षीराब्धितनया—उर्फ केवल क्षीरि आकर खड़ी हो गयी—मोटी-मोटी, नाटी-नाटी, पैरोंमें फूलका कड़ा पहने—हँसीसे भरा हुआ चेहरा। भ्रमरने कहा,—"क्षीरि। रोहिणी कलमुंहीके पास अभी जा सकेगी ?

क्षीरिने कहा,—'क्यों न जा सकूंगी ? क्या कहना होगा ?

भ्रमरने कहा,—"मेरा नाम लेकर कह आ कि उन्होंने कहा है कि तू मर।"

'यही ? जाऊँ ? कहकर क्षीरदा उर्फ क्षीरि—कड़े बजाती हुई

चल। जानेके समय भ्रमरने कह दिया,—"वह जो जवाब दे, मुझसे आकर कहियो।"

"अच्छा" कहकर क्षीरोदा चली गयी। थोड़ी ही देर बाद उसने आकर कहा,—"कह आई।"

भ्रमर—क्या कहा उसने ?

क्षीरि—उसने कहा कि कह दो, उपाय बता दें।

भ्रमर—तो फिर जा। कह आ कि जिस वारुणी तालाबमें—शामके वक्त गलेमें कलसी बांधकर—समझ गयी !

क्षीरि—अच्छा।

क्षीरि फिर गयी और फिर वापस आयी। भ्रमरने पूछा,—"वारुणी तालाबकी बात कह दी ?

क्षीरि—कह दिया।

भ्रमर—क्या बोली ?

क्षीरि—उसने कहा कि 'अच्छा'।

गोविन्दलालने कहा,—"छिः भ्रमर !"

भ्रमरने कहा,—डरो मत। वह मरेगी नहीं। जो तुम्हें देखकर मर चुकी है—वह क्या मर सकती है ?

—:*:—

पन्द्रहवां परिच्छेद

दैनिक सारे कार्यों को समाप्त कर रोजके नियमानुसार गोविन्दलाल शामके समय तालाबके किनारे वाले बागमें टहलने लगे।

गोविन्दलालको बगीचेमें टहलना बड़ा सुखकर जान पड़ता है। हरेक वृक्षके नीचे दो-चार बार टहलते हैं। लेकिन इस समय हम हरेक वृक्षकी बात न कहेंगे। वारुणीके किनारे बगीचेमें एक ऊंची पत्थरकी वेदी बनी है। वेदिकाके ऊपर पत्थरकी खोदी हुई एक स्त्री-मूर्ति है—स्त्री-मूर्ति अर्द्ध नग्न नीची निगाहें किये हुए है—एक घड़ेसे अपने चरणोंपर जैसे पानी डाल रही हो, वेदिका पर उसके चारो ओर सफेद रङ्गके मिट्टीके गमलोंमें छोटे-छोटे फूलके वृक्ष—जिरानियम, वार्तिनायू-फेरिया, चन्द्रमल्लिका, गुलाब—नीचे, उसी वेदिकाके चारो ओर कामिनी यूथिका, मल्लिका, गन्धराज आदि सुगन्ध वाले देशी फूलकी कतारें हैं—गन्धसे वायुमण्डल प्रमुदित कर रहे हैं—इसके बाद ही विविध, उज्ज्वल, नील, पीत, रक्त, श्वेत वर्णोंके पत्तोंके वृक्ष लगे हैं। इसी जगह गोविन्दलाल बैठनेमें बड़े सुखी होते हैं। चांदनी रातमें कभी-कभी भ्रमरको साथ लाकर वह इसी जगह बैठाते थे। भ्रमर उस पत्थरकी अर्द्ध नग्न मूर्त्तिको देखकर उसे कलमुंही कहा करती थी। कभी-कभी अपने अंचलसे उसके अङ्ग ढांक देती, कभी घरमेंसे उत्तम साड़ी लाकर उसे पहना देती—कभी-कभी उसके हाथके पत्थरके घड़ेको छीननेका प्रयास करती थी।

आज सन्ध्या समय उसी जगह बैठकर गोविन्दलाल शीशेकी तरह चमकनेवाले तालाबके जलको देखने लगे। देखते-देखते उन्होंने देखा कि तालाबकी प्रसस्त सीढ़ियोंपरसे रोहिणी बगलमें घड़ा दबाये उतर रही है। शब्द विना चल सकता है, लेकिन पानी बिना कैसे चल सकता है! आज ऐसे दुःखके दिन भी रोहिणी जल लेने आयी है।

रोहिणीके जलमें उतरकर नहाने-धोने की भी सम्भावना है—दृष्टिपथ पर उनका रहना अकर्त्तव्य समझकर गोविन्दलाल वहांसे हट गये।

बहुत देर तक गोविन्दलाल इधर-उधर घूमते रहे। अंतमें उन्होंने सोचा कि इतनी देरमें तो रोहिणी वहां से हट गई होगी। यह सोचकर गोविंदलाल फिर उसी वेदिकातल में जलनिषेकनिरता पाषाण सुन्दरी के पैरोंके पास जा बैठे। फिर उसी वारुणीकी शोभा निरखने लगे। उन्होंने देखा कि रोहिणी, या कोई स्त्री-पुरुष नहीं है। कोई कहीं न था—किन्तु जलके ऊपर एक कलसी तैर रही थी।

यह किसका घड़ा है? एकाएक सन्देह हुआ—कोई जल लेने आकर डूब तो नहीं गया? सिर्फ रोहिणी ही पानी भरने आयी थी—इसी समय एकाएक सवेरे की बात याद आ गयी। याद आया कि भ्रमर ने रोहिणीको कहला दिया था कि वारुणी तालाब में सन्ध्या समय-कलसी गले में बाँधकर। यह भी याद आया कि रोहिणी ने उत्तर में कहा था,—"अच्छा।"

गोविन्दलाल तत्क्षण पुष्करिणी घाटपर आये। खड़े होकर चारों तरफ देखने लगे। जल आईने की तरह स्वच्छ था। घाटके नीचे जलतलकी भूमि तक दिखाई पड़ रही है। उन्होंने देखा स्वच्छ स्फटिक सदृश हेमप्रतिमा रोहिणी जल के तल सोयी हुई है। जल के नीचेकी अन्धकार भूमि को अपनी विमल प्रतिमा से रोहिणी समुज्ज्वल किये हुई है।

—०*०—

सोलहवां परिच्छेद

गोविन्दलालने तुरत जलमें कूदकर रोहिणी को उठाया और सीढ़ीपर लाकर सुला दिया। उन्होंने देखा कि रोहिणी के जीवनमें सन्देह है, उसके श्वास-प्रश्वास बन्द थे, वह बेहोश थी।

गोविन्दलालने बगीचे के एक माली को बुलाया। माली की सहायतासे रोहिणोको उठाकर वह बगीचे को प्रमोदगृह में उसे सुश्रूषाके लिये ले गये। जिन्दा हो या मरी हुई हो, आखिर रोहिणी गोविन्दलालके गृह में प्रवेश कर गयी। भ्रमर के अतिरिक्त और किसी स्त्री ने उस उद्यानगृहमें प्रवेश न किया था।

वायु और वर्षा से धुले हुए चम्पा के फूलकी तरह वह मृत नारी-शरीर पलङ्ग पर लम्बा पड़ा हुआ दीप-आलोक में शोभा पा रहा था। लम्बे-काले बाल जलमें भींगे हुए थे—उनसे पानी चू रहा था, जैसे मेघ जल-वृष्टि कर रहे हों। आँखें मुंदी हुई थीं, उन मुंदे हुए पद्मोंपर गीले होने के कारण काली भौंहें बड़ी शोभा दे रही थीं। और वह ललाट स्थिर थे, विस्तारित लज्जामय विहीन, एकदम अव्यक्त भाव लिये हुए—गण्डस्थल अभी भी उज्ज्वल थे—अधरों पर अभी भी मधु खेल रहा था, लजवन्ती लता की पत्ती की तरह। गोविन्दलालकी आँखों में आंसू आ गये। वह बोले, "मर गयी ! भगवानने इतना रूप देकर तुम्हें क्यों भेजा था ? और यदि सुन्दरता दी तो सुखी क्यों न बनाया ? इस तरह तुम क्यों चल दी ?" इस सुन्दरीके आत्मघात के कारण वही हैं—यह सोचकर उनकी छाती फटी पड़ती थी।

यदि रोहिणीमें जीवन हो तो बचाना चाहिये। डूबे हुएको किस तरह निरापद करना चाहिये यह गोविन्दलाल जानते हैं। पेट का जल बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। दो-चार बार रोहिणी को उठाकर, बैठाकर अगल-बगल घुमाकर जल निकाल दिया गया। लेकिन इसे अभी सांसें चलने नहीं लगीं। यही सबसे कठिन काम है।

गोविन्दलाल जानते हैं, कि डूबे हुएके दोनों हाथ ऊपर उठाना और नीचे करने से फेफड़ों में हवा भरती है और उसी समय मुंह से फूंक कर हवा भरना चाहिये। इस तरह हाथ उठाने से फेफड़े फैलते हैं और मुंहकी हवा उसमें भर जाती है। फिर हाथ नीचा करने से वह हवा मुंह-नाक के जरिये निकलती है। इस-तरह कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलने लगती है जो आगे चलकर प्राकृतिक श्वास-प्रश्वास में परिणत हो सकता है। रोहिणी को ऐसा ही करना होगा। दोनों हाथ उठाने के बाद मुंहमें फूंकना पड़ेगा। उसके उस पके अनारकी लाली को लजानेवाले, अमृत से परिपूर्ण, मदनमदोन्माद हलाहल कलसी सदृश रङ्गीन होंठोंपर होंठ रख कर फूंकना पड़ेगा। अरे राम! कौन करेगा ?

गोविन्दलालका सहायक एक वही उड़िया माली है। बगीचेके सब माली अबसे पहले ही घर जा चुके थे। उन्होंने मालीसे कहा;—"मैं इसके दोनों हाथ ऊपर उठाता हूं, तूं इसके मुंह में फूंक तो सही!"

मुंह में फूंक ! सर्वनाश ! इन रंगीन अमृत भरे होंठों पर माली के होंठ पड़ेंगे ? बड़ी मुश्किल है रे भाई !

माली को यदि मालिक शालग्रामकी बटिया चबाने को कहते, तो शायद वह उनकी बात रखने के लिये वह भी कर डालता, लेकिन उसे चन्द्रमुखी के रंगीन होंठोंपर होंठ रखना ! माली को तो पसीना होने लगा। उसने साफ इनकार किया—"मैं न सकिहौं सरकार !"

मालीने ठीक ही कहा। माली उस देव दुर्लभ अधरोंपर यदि एकबार मुंह रख देता और यदि रोहिणी बच जाती—तो जब रोहिणी बगलमें घड़ा दबाकर ओंठ सिकोड़ इस माली की तरफ कटाक्ष मारकर चल देती, तो बेचारे मालीकी नौकरी ही न रह जाती। वह अपनी खुरपी, खचिया फेंककर रोहिणी के पीछे दौड़ पड़ता इसमें सन्देह नहीं। शायद वह सुवर्णरेखा के नील जलमें डूब मरता। मालीके मनमें यह सब विचार उठे थे या नहीं, नहीं कहा जा सकता—लेकिन यह सही है कि उसने मुंह में फूंकने से इनकार कर दिया था।

अन्तमें गोविन्दलालने कहा,—"तब तू इसके दोनों हाथ उठाओ मैं फूंकता हूं। इसके बाद धीरे-धीरे हाथ नीचे करियो।" माली ने यह स्वीकार कर लिया। उसने रोहिणी के दोनों हाथ पकड़कर धीरे-धीरे उठाया—गोविन्दलालने फुल्लरक्तकुसुम कान्ति होंठों पर अपने फुल्लरक्त कुसुमकान्ति अधर रक्खे—रोहिणीके मुंहमें उन्होंने फूंका।

इसी समय भ्रमर एक लाठी लेकर बिल्ली मारने जा रही थी। बिल्ली को मारनेमें लाठी बिल्ली को न लगकर उसीके सिरमें लगी।

मालीने रोहिणी के दोनों हाथोंको नीचा किया। फिर गोविन्द-लालने फिर फूंक मारा। फिर उसी तरह किया गया। बार-बार यही प्रक्रिया की जाने लगी। दो-तीन घण्टे तक यही किया गया। रोहिणी की सांस चलने लगी। रोहिणी बच गयी।

—०✻०—

सत्रहवां परिच्छेद

रोहिणी की सांस चलने लगी—गोविन्दलालने दवा खिलायी। ओषधि बलकारक थी—क्रमशः रोहिणीमें बल-संचार होने लगा। रोहिणी ने आँखें खोलकर देखा सज्जित मनोहर कमरे में खिड़की की राह से मन्द शीतल पवन आ रहा था—एक तरफ स्फटिकके बने दीवट पर दीपक जल रहा था। दूसरी तरफ हृदयाधारका जीवन प्रदीप जल रहा था। रोहिणी गोविन्दलाल के हाथों से मिली हुई मृतसंजीवनी सुरा पीकर मरकर भी जीने लगी। पहले निश्वास चली, फिर चैतन्य हुआ, आँखें खुलीं, फिर स्मृति आयी, फिर बोलने लगी। रोहिणी ने कहा,—मैं तो मर गयी थी, मुझे किसने बचाया ?"

गोविन्दलालने कहा,—"चाहे जिसने बचाया हो, तुम बच गई हो, यही बड़ी बात है।"

रोहिणी बोली,—"मुझे क्यों बचाया आपने ? आपके साथ मेरी कौन-सी ऐसी शत्रुता है कि आप मुझे मरने भी न देते ?"

गो०—तुम क्यों मरोगी ?

रो०—क्या मरनेका भी मुझे अधिकार नहीं ?

गो०—पाप करनेका अधिकार किसीको नहीं है। आत्महत्या भी पाप ही है।

रो०—मैं पाप-पुण्य नहीं जानती, मुझे किसीने सिखाया भी नहीं। मैं पाप-पुण्य मानती भी नहीं। किस पापसे मुझे यह दण्ड मिला है ? पाप न करनेपर भी यदि यह दुःख है, तो पाप करनेसे ही इसके अधिक क्या होगा ? मैं मरूंगी। इस बार विफल हुई, इसलिये कि तुम्हारी आँखोंके सामने पड़ गई थी—तुमने रक्षा की। अब ऐसा यत्न करूंगी कि तुम्हारी आँखोंके सामने न पड़ूं।

गोविन्दलाल बड़े दुःखी हुए। बोले,—"तुम क्यों मरोगी ?"

"बहुत दिनोंसे क्षण-क्षण, पल-पल, रात-दिन मरनेसे अच्छा है एक बार ही मरकर छुट्टी पा जाऊं।"

गो०—ऐसा कौन-सा कष्ट है, तुम्हें ?

रो०—रात-दिनकी भयानक प्यास, हृदय जला जाता है—सामने ही शीतल जल है, किन्तु इस जन्ममें उस जलका स्पर्श भी नहीं कर सकती। कोई आशा भी नहीं।

इसपर गोविन्दलालने कहा,—"इन सब बातोंकी जरूरत नहीं—चलो, तुम्हें घर पहुंचा आऊं।"

रोहिणीने जवाब दिया,—"नहीं, अकेली ही चली जाऊँगी।

गोविन्दलाल समझ गये कि किस बातकी आपत्ति है। गोविन्द-लाल कुछ बोले भी, नहीं, फिर ही रह गये। रोहिणी अकेली ही चली गयी।

तब उस अकेले कमरेमें गोविन्दलाल:जमीनपर लोटकर लगे रोने। मिट्टीमें मुंह छिपाकर आंसुओंकी धारा बहती हुई आंखोंसे पुकारकर कहने लगे,–'हा नाथ! नाथ! इस विपत्ति से तुम मेरी रक्षा करो। तुम्हारा बल न पाकर मैं किस बलसे इस महाविपदसे रक्षा पाऊँगा। मैं मरूँगा—मेरी भ्रमर भी मर जायगी। प्रभु! इस हृदयमें आओ, विराजो! तुम्हारे रहनेसे, हृदयमें बल मिलेगा—तुम्हारे बलसे मैं आत्मजय करूंगा।

—:*:—

अठारहवां परिच्छेद

गोविन्दलालके घर लौट आनेपर भ्रमरने उनसे पूछा,—आज इतनी राततक बगीचेमें क्यों रहे?"

गो०—क्यों पूछती हो? क्या और कभी बगीचेमें नहीं रहा?

भ्रमर—रहे हो, लेकिन आज तुम्हारा मुंह देखकर, तुम्हारे कण्ठकी आवाज सुनकर जान पड़ता है, कुछ हुआ है।

गो०—क्या हुआ है?

भ्र०—क्या हुआ है, यह विना तुम्हारे बताये कैसे जान सकती हूं? मैं क्या वहां बैठी थी?

गो०—क्यों? क्या इस चेहरेको देखकर भी नहीं बता सकती!

भ्रू०—मज़ाक रहने दो। मुंह देखनेसे कह सकती हूं कि कोई भारी बात हुई है। मुझे बताओ, मेरा प्राण सुननेके लिये व्याकुल हो रहा है।

यह कहते-कहते भ्रमरकी आंखोंसे आंसू गिरने लगे। गोविन्द-लालने आँखोंके आंसू पोंछते हुए प्यार कर कहा,—फिर किसी दिन बता दूँगा, भ्रमर! आज नहीं।

भ्रमर—आज क्यों नहीं ?

गो०—तुम अभी बालिका हो, बालिकाको वह बात सुननेकी जरूरत नहीं।

भ्रू०—कल क्या मैं बूढ़ी हो जाऊँगी ?

गो०—कल भी न बताऊंगा—दो वर्ष बाद बताऊंगा। अब इस बातको फिर न पूछना, भ्रमर!

भ्रमरने ठण्डी सांस ली। बोली,—'ऐसा ही सही। दो वर्ष बाद ही कहना—मेरी सुननेकी बड़ी इच्छा थी, लेकिन जब तुम न कहोगे, तो मैं सुन ही कैसे सकती हूं ? मेरा मन न जाने कैसा कर रहा है!

न जाने कैसा भारी दुःख भ्रमरके हृदयके भीतर अन्धकार फैलाने लगा। जैसे वसन्तका आकाश,—बहुत सुन्दर, नीला, स्वच्छ उज्ज्वल हो-कहीं कुछ न हो-एकाएक उसपर एक बादल आकर चारों-तरफ अन्धेरा फैला दे-भ्रमरको मालूम हुआ कि उसके हृदयके अन्दर इसी तरह एक बादलने आकर चारों तरफसे अन्धेरा फैला दिया हो भ्रमरकी आँखोंसे जल आने लगा। फिर भ्रमरने मनमें सोचा,—मैं व्यर्थ रो रही हूं। मैं बड़ी दुष्ट हो गयी हूं। मेरे पति नाराज

होंगे। अतः भ्रमर—रोती हुई बाहर चली गयी और एक घरके एक कोनेमें बैठकर, पैर फैलाकर विष्णुसहस्रनाम पढ़ने लगी। माथा कपाल क्या पढ़ा, यह तो नहीं बता सकता, लेकिन छातीपरका वह काला मेघ किसी तरह भी न हटा।

—०*०—

उन्नीसवां परिच्छेद

गोविन्दलाल बाबू आपने ताया के पास बैठकर कामकाजकी बातें में प्रवृत हुए। बातोंही बातोंमें किस जगहकी जमींदारीकी क्या अवस्था है, यह सब पूछने लगे। कृष्णकान्तने गोविन्दलालको कामकाजमें मन लगाता देखकर सन्तुष्ट होकर कहा,—"अगर तुम थोड़ा देख-भाल करो; तो बहुत अच्छा हो। देखो, मैं कितने दिन रहूंगा ! तुम लोग यदि अभीसे सब समझ-बुझ न लोगे, तो मेरे मर जानेपर कुछ भी समझ न सकोगे। देखो, मैं वृद्ध हुआ, कहीं आ-जा भी नहीं सकता। लेकिन विना अपने गये, सारी जमींदारी निरङ्कुश हो रही है।

गोविन्दलालने कहा,—"आप यदि कहें तो मैं जा सकता हूं। मेरी भी इच्छा है, एक बार सारी जमींदारी देख-सुन आऊँ।

कृष्णकान्त बड़े प्रसन्न हुए। बोले,—"मुझे इसमें बड़ी खुशी है। सम्प्रति बन्दरखालीमें कुछ गोलमाल भी हो गया है। नायब कहता है कि प्रजा सत्याग्रह कर रही है, रुपये नहीं दे रही है, प्रजा कहती

है, कि हमलोग मालगुजारी देते हैं, नायब रसीद नहीं देता। तुम्हारी यदि इच्छा हो, तो कहो, मैं तुम्हें वहां भेजनेका बन्दोबस्त करूं।

गोविन्दलाल राजी हुए। वह इसीलिये कृष्णकान्तके पास आये थे। उनकी यह भरी जवानी है—सारी मनोवृत्तियाँ उबल रही हैं, सागर तरङ्गकी तरह प्रबल है, सौन्दर्यकी प्यास परम सीमापर है। भ्रमरसे वह प्यास बुझती नहीं है। निदाघकी मेघमालाकी तरह रोहिणीका रूप इस चातककी आँखोंके सामने उदित हुआ—प्रथम वर्षाके बादलोंको देखकर मयूरीके मनकी तरह गोविन्दलालका मन नाच उठा। गोविन्दलालने इसे समझकर मन-ही-मन शपथ खाकर स्थिर किया कि चाहे मर जाऊँ, किन्तु भ्रमरके सामने कभी प्रतारक-अविश्वासी न हूंगा। उन्होंने हृदयमें यह सङ्कल्प किया कि काम-काजमें इसी सङ्कल्पके अनुसार गोविन्दलाल अपने तायाके पास बैठकर काम-काजकी बातें की थीं। बन्दरखाली का हाल सुनकर बड़े आग्रहके साथ वहां जानेके लिए तैयार हुए।

भ्रमरने सुना कि मझले बाबू देहात जायंगे। भ्रमरने कहा,—"मैं भी जाऊँगी।" रोना-धोना, जिद शुरू हो गयी। लेकिन भ्रमरकी सामने उसे किसी तरह भी जाने न दिया। नाव सजवाकर, नौकर चाकरसे परिवेष्टित हो, भ्रमरका मुखचुम्बन कर गोविन्दलाल इसकी राहमें पड़नेवाले बन्दरखालीके लिये यात्रा की।

पहले भ्रमर जमीनपर लोटकर रोयी, इसके बाद उठकर उसने विष्णुसहस्रनामकी पोथी फाड़ डाली, पिंजड़ाखोलकर पक्षियोंको उड़ा दिया, टब-गमलेमें लगे सारे फूलके वृक्षोंको उखाड़ फेंका, खानेका

भोजन रसोइदारपर फेंक दिया, मजदूरनीका झोंटा पकड़कर घुमाकर गिरा दिया, नन्दके सङ्ग झगड़ा किया—इस तरह अनेक उपद्रव-कर अन्तमें सोने गयी।। लेटकर सर-पैरसे चादर तानकर वह फिर रोने लगी। इधर अनुकूल वायु मिलनेसे गोविन्दलालकी नाव नदीकी धाराको चीरती हुई आगे बढ़ने लगी।

—:*:—

बीसवां परिच्छेद

कुछ अच्छा नहीं लगता—भ्रमर अकेली है। भ्रमरने बिछौना फेंक दिया—बहुत नर्म है, कमरेका पंखा खोल दिया-हवा बहुत गर्म है, मजदूरनियोंसे फूल लानेको मना कर दिया—फूलमें कीड़े हैं। ताश खेलना बन्द कर दिया-सखियोंके पूछनेपर कहती-ताश खेलनेसे सास बिगड़ती है। सुई, डोरा, ऊना, पेटर्न-सब एक-एक करके पड़ोसियोंको दे दिया। पूछनेपर बोली—आँखोंमें बड़ी ज्वाला है। घरमें धुले वस्त्र भरे पड़े हैं, लेकिन मैले कपड़े पहनती है, पूछनेपर धोबीको गाली देती है। माथेके बालोंका तेलसे सम्पर्क न था-कांसके जङ्गलकी तरह उसके बाल हवामें उड़ते थे—पूछनेपर हँसती बालोंको और जटाकी तरह बांध लेती है। भोजनके समय नित्य बहाना करने लगी,—मैं न खाऊँगी, मुझे बुखार आ गया है। सासने कविराज बुलाकर औषधिकी व्यवस्था करा दी—क्षीरोदसे कहा गया कि बहूको समय पर दवा खिलानेका भार तुझपर है—अतः क्षीरोद जब दवा सामने लाती है, तो भ्रमर उसे लेकर खिड़कीके बाहर फेंक देती है।

क्रमश; भ्रमर की यह नाराजगी क्षीरि मजदूरनीकी आँखोंमें असह्य हो उठी। क्षीरिने कहा;-"भला बहूरानी! किसके लिये तुम यह सब करती हो? जिनके लिये तुमने आहार-निद्राका परित्याग कर दिया है, क्या वह एक दिनके लिये भी तुम्हारा ख्याल करते होंगे? तुम रो-धोकर मर रही हो, और वह शायद फर्शीका सटक मुंहमें लगाकर आँखें बन्दकर रोहिणी सुन्दरीका ध्यान करते होंगे।"

भ्रमरने क्षीरिको तड़ाका एक थप्पड़ जड़ दिया। भ्रमरका हाथ गजबका चलता है। सलासी होकर कहने लगी,—"मुझे अगर अपने मनकी बकबक करनी हो, तो हट जा मेरे सामने से।"

क्षीरिने कहा,—"चपत—थप्पड़से क्या किसीका मुंह बन्द हो जायेगा? तुम्हारे क्रोधके डरसे हमलोग तुम्हारे सामने मुंह न खोलेंगी लेकिन विना कहे भी तो नहीं रहा जाता। पांची चाण्डालिनीको बुलाकर पूछो तो भला, उस दिन इतनी रातको रोहिणी बाबूके बगीचेसे लौट रही थी या नहीं?"

क्षीरोदाका भाग्य खराब था कि सवेरे-सवेरे उसने भ्रमरके सामने यह बातें कहीं। भ्रमरने डटकर थप्पड़-पर-थप्पड़, घूंसे-पर-घूंसे, धांय-धांय घुस्से-घस्से लगाना शुरू किया। फिर धक्का देकर गिराकर झोंटा पकड़कर लगी घसीटने। अन्तमें भ्रमर खुद रोने बैठी।

क्षीरोदा बीच-बीचमें भ्रमरके लात-घूंसे खाकर भी नाराज नहीं होती थी। लेकिन आज कुछ उसे भी भान आ गया, नाराज हो गयी। बोली,—'तो बहूजी! हमें मारने-पीटनेसे क्या होगा? तुम्हारे ही लिये हमलोग कहती हैं। तुम लोगोंकी बातें उठाकर लोग तरह-तरह

की बातें कहते हैं—हमलोगोंसे वह सहा नहीं जाता। अगर हमारी बात पर तुम्हें विश्वास न हो तो पांचीको बुलाकर पूछ लो।

भ्रमर क्रोध और दुःखसे रोती-रोती बोली,—"तुझे पूछना हो तो तू ही जाकर पूछ। मैं क्या तुमलोगोंकी तरह ओछी और पाजी हूं कि अपने पतिकी बासा पांची चंडालिनीसे पूछने जाऊंगी? तू इतनी बड़ी बात मुझसे कहती है? साससे कहकर तुझे झाड़ू लगवाकर निकाल बाहर कराऊंगी। चल, हट जा, मेरे सामनेसे तू।"

सवेरे-सवेरे इस तरह क्षीरोदा मजदूरन भले-बुरे दो चार हाथ खाकर क्रोधसे बड़बड़ाती हुई चली गयी। इधर भ्रमर ऊपर मुंह उठाकर सजलनयन हो हाथ जोड़कर मन-ही-मन गोविन्दलालको पुकारकर कहने लगी,—"हे गुरो! शिक्षक, धर्मज्ञ हमारे एक मात्र सत्यस्वरूप तुम्हीं हो। तुमने क्या उस दिन यही बात मुझसे छिपायी थी?"

उसके मनके भीतर जो मन है, हृदयके जिस छिपे स्थान को कोई देख नहीं सकता, जहाँ आत्मप्रवंचना नहीं है, वहाँ तक भ्रमरने घुसकर देखा, स्वामीके प्रति उसके हृदयमें अविश्वास नहीं है। अविश्वास होता ही नहीं। भ्रमरने मनमें यह भी सोचा कि उनके अविश्वासी होनेसे भी दुःख क्या? मेरे मर जानेसे ही सब समाप्त हो जायेगा। हिन्दू घरकी औरतें—मरना बहुत सहज समझती हैं।

—:*:—

इक्कीसवां परिच्छेद

अब क्षीरि मजदूरनीने मनमें सोचा—यह घोर कलिकाल है—एक छोटी-सी लड़की मेरी बातपर विश्वास नहीं करती। क्षीरोदाके सरल अन्तःकरणमें भ्रमरके प्रति कोई राग द्वेष नहीं है, वह भ्रमरकी मङ्गलाकांक्षिणी है सही, उसका अमङ्गल नहीं चाहती, लेकिन उसकी बात जो भ्रमरने कानमें नहीं पहुंचने दी, यह उसे असह्य है। क्षीरोदाने अपने चिकने शरीरपर थोड़ा तेलकी मालिश कर, रङ्ग हुआ अंगोछा कन्धेपर रख कलसी बगलमें दबाकर वारुणी घाटपर स्नान करनेके लिये चली।

ब्राह्मणी हरमणि बाबू लोगोंके यहां की एक रसोईदारिन है। वह उसी समय तालाबसे स्नानकर लौट रही थी, पहले उसकी उसीके साथ मुलाकात हुई। हरमणिको देखकर क्षीरोदाने स्वयं ही कहा,-इसी को कहते हैं, जिसके लिये चोरी करे, वही रहे चोर—अरे राम राम, बड़े लोगोंकी नौकरी नहीं हो सकती बाबा! कब किसका कैसा मिजाज रहे, क्या ठिकाना है?

हरमणिने जरा भिन्दाकी गन्ध पाकर, दाहने हाथका गीला कपड़ा बाएं हाथ पैर रखकर पूछा,—"क्या हुआ, बहन, क्षीरोदा! क्या हुआ है?"

क्षीरोदाने अपने मनका बोझ कुछ हलका किया। फिर बोली,—"बताओ न बहन! महल्ले की सब कलमुंही बाबूके बगीचे

में घूमने जायेंगी और हमलोग नौकर-मजदूरनी देखेंगे, तो भला मालिकसे न कहेंगे ?"

हर०—भला रे ! महल्ले की कौन औरत गयी बाबूके बगीचे में घूमने !

क्षी०—और कौन जायेगा ? वही कलमुंही रोहिणी गयी थी।

हर०—आग लगे भाग्यमें ! रोहिणीका यह हाल कबसे है ? किस बाबूके बगीचेमें रे, क्षीरोदा ?

क्षीरोदाने मझले बाबूका नाम लिया। इसपर दोनों आपस में आँखें मटका कर रसीली हंसी से हंसतीं हुई अपने-अपने रास्ते पर चल पड़ीं। कुछ देर जाते ही क्षीरोदा से महल्लेकी रामकी मां मुलाकात हुई। क्षीरोदाने उसे भी अपनी हंसीकी बांध में बांध कर और खड़ी कराके रोहिणीकी दौरात्म्यकी बात कह डाली। फिर दोनों कटाक्षकी हंसीसे अपनी-अपनी राह लगीं।

इस तरह क्षीरोदाने राहमें रामकी मां, श्यामकी नानी, हीराकी मांसी और काली, तारा; फलानी-ढेकानी कितनों से अपने मर्म की वेदनाका परिचय दिया, अन्त में स्वस्थ शरीर और प्रफुल्ल हृदय से वारुणी के स्फटिक जैसे निर्मल जलमें स्नान किया। इधर हरमणिसे जितनी औरतों से मुलाकात हुई—रामकी मां, श्यामकी नानी आदि-आदि सबसे—मझले बाबू के बगीचे में हतभागिनी रोहिणी के जाने की बात कह डाली। एक शून्य संयोगसे दश हो गया, दश शून्य सहयोगसे सौ और इसी तरह सौ हजार में परिणत हुआ, जिस क्षीरीने भ्रमर से सवेरे-सवेरे सूर्योदयके प्रथम

किरण के साथ-साथ बात कही, वही बात शामके अस्ताचलके समय तमाम महल्ले के घर-घर पहुंच गई, कि रोहिणी मझले बाबूके अनुगृहीत है। केवल बगीचे की बात से अपरिमेय प्रणय की बात अपरिमेय प्रणय से अलङ्कार-गहने तक साथ ही और कितनी बातें उठीं, इसे मैं—हे रचनाकौशलमयी, कलङ्ककलितकण्ठा, कुल-कामिनीगण! इसे मैं अधम सत्यशासित लेखक आपलोगोंके सामने सविस्तर कहकर झंझट बढ़ाना नहीं चाहता।

धीरे-धीरे भ्रमरके पास तक खबर पहुंचने लगी। पहले विनोदिनीने आकर कहा,—"अरे यह बात सच्ची है क्या?" भ्रमरने सूखे हुए चेहरे और टूट हृदय से पूछा,—"क्या सच है, महराजिन!" महराजिनने कामदेवके फूलके धनुषकी तरह अपनी भौंहें टेढ़ीकर आँखोंसे बिजली छिटकाती हुई, लड़केको गोदमें बैठाकर कहा,—"अरे वही रोहिणी की बात?"

भ्रमरने विनोदिनीसे कुछ न कहकर उसके गोदके लड़के को छीनकर अपनी गोदमें लेते हुए बाल्यसुलभ खिलबाड़ के वशीभूत हो उसे रुला दिया। विनोदिनी अपने बालको स्तन पान कराती हुई चली गई।

विनोदिनीने के बाद सुरधुनी ने आकर कहा,—"क्यों मझली बहू! न कहा था कि मझले बाबू की दवा करो। हजार हो तुम गोरी तो हो नहीं, आदमियोंका मन केवल बातसे ही तो पाया नहीं जाता, कुछ रूप-गुण चाहिये। लेकिन भाई! रोहिणीके पास कितनी बुद्धि है, कौन जाने?"

भ्रमर ने कहा,—"बुद्धि ? काहे की बुद्धि ?'

सुरधुनीने माथेपर हाथ मारकर कहा,—"अरे बाहरे भाग्य ! इतने आदमियोंने सुन लिया सिर्फ तुमने नहीं सुना ? मझले बाबूने रोहिणीको सात हजार रुपयेके गहने न दिये हैं !"

भ्रमरकी हड्डी-हड्डी जल उठी। मन-ही-मन सुरधुनी को यम के हाथ समर्पण करने लगी। प्रकट रूपमें एक पुतलेका सर तोड़ कर सुरधुनीसे बोली,—"यह मैं जानती हूं। खाता भी देखा है। तेरे नाम चौदह हजार का गहना लिखा हुआ है।'

इस तरह विनोदिनी सुरधुनी के बाद रामी, वामी, श्यामी, कामिनी, रमणी, शारदा, प्रमदा, सुखदा, वरदा कमला, विमला, शीतला, निर्मला, माधू, निधू, विधू, तारिणी निस्तारिणी, दीन-तारिणी, भवतारिणी, सुरबाला, गिरिबाला, ब्रजबाला, शैलबाला, आदि-आदि अनेकोंने एक-एक दो-दोकर आकर विरहकातरा बालिका से कहा कि तुम्हारा पति रोहिणी का प्रणदासक्त है। कोई युवती कोई अधेड़, कोई वृद्धा, किसी बालिका ने आकर कहा,—"अचरज क्या है ? मझले बाबूका रूप देखकर कौन नहीं भूल सकता। रोहिणी का सौन्दर्य देखकर वही क्यों न भूले होंगे ? किसीने आदरके साथ किसीने चिढ़ाकर, किसीने रशके साथ किसीने रागवश, कोई कोई दुखसे, किसीने हंसकर, किसीने रोकर भ्रमरको सूचित किया, "भ्रमर ! तुम्हारा भाग्य फूट गया।"

गाँवमें भ्रमर सुखी थी। उसका सुख देखकर सभी हिंसा करते थे—काली कुरूपाको इतना सुख, इतना ऐश्वर्य—देवदुर्लभ

स्वामी—लोकमें कलङ्करहित यश—पराजिताको पद्म का आदर ? कि उसपर मल्लिकाका सौरभ ? गाँववालों का इतना सहन न हुआ। इसीलिये दल बाँधकर, अकेले-दुकेले कोई लड़का दबाये हुई, कोई बहन को लिये हुई, कोई चोटी गुथती हुई; कोई अधगुथी चोटीसे, कोई खुले बालोंसे कहनेके लिये आयी,—"भ्रमर तुम्हारा। मुख सुख गया।" किसीके मनमें यह न हुआ कि भ्रमर पतिविरहा-विधुरा, नितान्त दोषरहित दुःखिनी बालिका है।

भ्रमर अधिक सहन न कर सकने के कारण दरवाजा बन्दकर जमीनपर लेटकर लगी रोने। मन-ही-मन बोली,—"हे सन्देह-भञ्जन ! हे प्राणाधिक ? तुम्ही मेरे सन्देह हो, तुम्ही मेरे विश्वास हो। आज किससे पूछूँ ? मुझे क्या सन्देह है ? लेकिन सभी तो कह रहे हैं। सच न होनेसे सब क्यों कहेंगे ? तुम यहां नहीं हो आज मेरा सन्देह भञ्जन कौन करेगा ? मेरा सन्देह नही टूटता है—तो मैं मर क्यों नहीं जाती इस सन्देह के रहते क्या कोई बच सकता है ? मैं मरती क्यों नहीं ? लौटकर, प्राणेश्वर ! भ्रमर को गाली न देना कि वह बिना कहे मर गयी।"

—०*०—

बाईसवां परिच्छेद

इस समय भ्रमरको भी वही ज्वाला है—रोहिणीको भी वही ज्वाला है। बात फैलने पर रोहिणीके कानों में क्यों न पहुंचेगी ? रोहिणी ने सुना कि गांवमें बात फैली है—गोविन्दलाल उसके

गुलाम है—सात हजारके गहने दिये हैं। बात कहां से उठी, किसने उठाया, कोई खबर इसकी उसने नहीं ली, एकदम यही निश्चय कर लिया कि भ्रमरने ही यह बात उठायी है, अन्यथा दूसरेको इतनी जलन क्यों होगी ? रोहिणीने सोचा कि भ्रमरने मुझे बहुत जलाया। उस दिन चोरीका अपवाद—आज यह अपवाद ! अब इस गांवमें न रहूंगी। लेकिन जाने से पहले एकबार भ्रमरकी हड्डी-हड्डी जलाकर जाऊँगी।

यह तो पहले के परिचय से मालूम हो गया है कि ऐसा कोई काम नहीं, जिसे रोहिणी न कर सकती हो। रोहिणी किसी पड़ोसी से एक बनारसी साड़ी और पूरा सेट गहना गिलटके मांग लायी। शाम हो जानेपर उन सबकी गठरी बांधकर वह राय लोगोंके अन्तः-पुरमें पहुँची। जहां अकेली भ्रमर जमीन पर लेटी हुई कभी रोती, कभी आँसू पोंछकर पाटनकी घरन और कड़ी निहारती है, वहीं जा पहुँची और गठरी रखकर बैठ गई। भ्रमरको आश्चर्य हुआ रोहिणीको देखकर उसका शरीर विषकी ज्वालासे जल उठा। असहनीय होनेपर भ्रमर बोली,—"उस दिन रातको तुम ससुरके घरमें चोरी करने आयी थी। आज रातको मेरे घर भी उसी अभिप्रायसे आयी हो क्या ?"

रोहिणीने मन-ही-मन कहा,—"तुम्हारा मुँह फूंकने आयी हूं।" प्रकट बोली,—"अब मुझे चोरीकी जरूरत नहीं है। अब रुपयोंकी कङ्गाल नहीं हूं। मझले बाबूकी कृपासे अब मुझे खाने-पहननेकी

तकलीफ नहीं है। फिर भी लोग जो बात कह रहे हैं, वे बातें नहीं है।"

भ्रमरने कहा,—"तुम यहां से निकल जाओ।"

रोहिणीने वह बात अनसुनी कर कहा,—"लोग जितना कह रहे हैं, उतना नहीं है। लोग कहते हैं, कि मैंने सात हजार के गहने पाये हैं। सिर्फ तीन हजारका गहना और यह एक साड़ी पाया है। इसीलिये तुम्हें दिखाने आयी हूं। सात हजार लोग क्यों कहते हैं?"

यह कहकर रोहिणीने पोटली खोलकर वह साड़ी और गिलट के गहने दिखाने लगी। भ्रमरने लात मारकर गहनोंको चारों तरफ छिटका दिया।

रोहिणी बोली,—"सोनेको पैर से नहीं छूना।" यह कहकर रोहिणी चुपचाप छिटके हुए गहनोंको बटोरकर पोटली बाँधने लगी। पोटली बाँधकर निःशब्द वह बाहर निकल गयी।

हमलोगोंको बड़ा दुःख रह गया। भ्रमरने क्षीरोदाको पीट दिया था, लेकिन रोहिणीको उसने एक चपत भी नहीं लगाया, यही हमारे आन्तरिक दुःखका कारण है। हमारी पाठिकाओं के वहाँ उपस्थिति रहनेपर, रोहिणीको जो अपने हाथोंसे पीट देती, इसमें हमें कोई संशय नहीं है। स्त्रियोंपर हाथ नहीं उठाना चाहिये यह मानता हूं। लेकिन राक्षसी या पिशाची पर भी हाथ नहीं उठाना, यह भी मैं नहीं मानता। फिर भी भ्रमर ने जो रोहिणी को नहीं मारा, यह समझा सकता हूं। भ्रमर क्षीरोदा से प्रेम करती

है, इसलिये उसने उसे मार दिया। रोहिणीको तो प्यार करती नहीं, इसीलिये उसने नहीं मारा। लड़कों-लड़कों में झगड़ा हो जाने पर माता अपने ही लड़के को मारती है, दूसरे लड़केको नहीं।

—०*०—

तेईसवां परिच्छेद

उस रातके बाद ही सवेरा होते-न-होते भ्रमर पतिको पत्र लिखने के लिये बैठी। लिखना-पढ़ना गोविन्दलालने सिखा दिया था; लेकिन लिखने-पढ़नेमें भ्रमर उतनी पक्की हुई न थी। फूलमें, खिलौनेमें, पक्षीमें, पतिमें ही भ्रमरका मन रहता था, लिखने-पढ़ने या गृहस्थीमें नहीं। कागज लेकर लिखने बैठती थी, एकबार मिटाती, एकबार काटती, फिर कागज बदलकर फिर मिटातीं, फिर काटती थी। अन्तमें फेंक देती है। दो-तीन दिनोंमें भी एक पत्र पूरा न होता था, लेकिन आज यह सब नहीं हुआ। टेढ़ो-तीरछी लाइनमें आज जो कुछ लेखनी के नोक से लिखा गया, सब भ्रमर के लिये ठीक था। म, भ की तरह हुआ, भ, म, हो गया, फ, क, की तरह तो क, फ, की तरह थ; य, की तरह च, छ, की तरह इकार की जगह आकार आकार; का स्थान ही लुप्त, युक्त अक्षर अलग-अलग, बीचमें किसी अक्षरका लोप, लेकिन भ्रमर किसी तरह भी रुकी नहीं। आज एक घण्टे के अन्दर भ्रमरने एक बड़ा पत्र लिख मारा। काटाकुटी नहीं था—यह बात नहीं। हम पत्रका कुछ परिचय यहां देते हैं;—भ्रमर लिखती है :—

"सेविका श्री भोमर" (इसके भोमर काटकर उसने भ्रमर बनाया) (दास्याः पहले दास्मा, फिर काटकर दास्य–उसे काटकर दास्यो—दास्योः नहीं लिख सकी) प्रणामाः (प्र लिखने के पहले स्र इसके बाद श्र, अन्तमें प्र) निवेदनञ्च (पहले निवेदंच, इसके बाद निवेदनञ्च) 'विशेस' (आखिर 'विशेषः' नहीं ठीक हुआ)

इसी तरह की पत्र लिखने की प्रणाली थी। उसने जो कुछ लिखा, उसके अक्षर शुद्ध कर संशोधन कर नीचे लिखते हैं।

"उस दिन रातको बगीचेमें क्यों देर लगी, इसे तुमने खोलकर नहीं बताया। कहा था कि दो वर्ष बाद कहेंगे, लेकिन भाग्य दोष से मैंने पहले ही सुन लिया। सुना क्यों देखा है। तुमने रोहिणी को जो वस्त्र अलङ्कार दिये हैं, उन्हें उसने स्वयं मुझे दिखाया है।

'तुम शायद मनमें समझते होंगे—तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति अचल है—तुमपर मेरा अनन्त विश्वास है। मैं भी इसे जानती हूं। लेकिन अब समझ गयी कि यह बात नहीं है। जितने दिन तक तुम भक्तिके योग्य थे, उतनी दिनों तक मेरी भक्ति थी, जितने दिनों तक तुम विश्वसनीय थे, उतने दिनों तक मैं विश्वास करती रही। अब तुम्हारे प्रति न तो विश्वास है और न भक्ति ही है। तुम्हारे दर्शनसे अब मुझे सुख नहीं है। तुम जब घर लौटने लगना तो कृपाकरके मुझे खबर दे देना—मैं रो-धोकर जैसे बनेगा, पिता के घर चली जाऊंगी।"

गोविन्दलालने यथासमय यह पत्र पाया। उनके माथे पर बज्रा-घात हुआ। केवल हस्ताक्षर और अशुद्धियाँ देखकर ही उन्हें

विश्वास हो गया कि यह भ्रमरका लिखा हुआ है। फिर भी मनमें बारबार सन्देह होने लगा—भ्रमर उन्हें ऐसा लिख सकती है—इस-पर कभी उन्हें विश्वास न था।

उसी डाकसे और भी कितने ही पत्र आये थे। गोविन्दलालने सबसे पहले भ्रमरका ही पत्र खोलकर-पढ़कर स्तम्भितकी तरह बहुत देरतक शून्यसे बैठे रहे। इसके बाद अनमने होकर दूसरे पत्र पढ़ने लगे। उसमें उन्होंने ब्रह्मानन्द घोषका भी एक पत्र पाया। कविताप्रिय ब्रह्मानन्द लिखते हैं।

'भैया! राजा-राजामें युद्ध होता है और प्राण जाता है सरपतों का। तुमपर बहूजी हरतरहका दौरात्म्य कर सकती है, लेकिन हमलोगोंपर यह क्यों? उन्होंने घोषित किया है कि तुमने रोहिणी-को सात हजार रुपयोंके गहने दिये हैं। और भी कितनी गर्हित बातें उड़ाई हैं—उन्हें लिखते लज्जा मालूम होती है। जो हो-तुमसे मेरी नालिश है—तुम इसका प्रतीकार करो। अन्यथा मैं यहांका अपना निवास त्याग दूंगा। इति।

गोविन्दलाल फिर अचरजमें पड़े। भ्रमरने बात उड़ायी है? कुछ भी तथ्य समझ न सकनेके कारण गोविन्दलालने उसी दिन आज्ञा दी—'यहांका जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है—मैं कल ही घरके लिये रवाना हूंगा। नाव तैयार करो।

दूसरे दिन नावकी सवारीसे दुखी मनसे गोविन्दलालने घरके लिये सफर की।

—o:*o:—

चौबीसवां परिच्छेद

जिससे प्रेम करो, उसे आंखोंकी ओट होने न दो। यदि प्रेम-बन्धनको दृढ़ रखना हो, तो सूत छोटा करो। चाहनेवालेको आँखों-के सामने रखो। बिना देखे, कितने विषम फल होते हैं। जिसे विदा करते समय कितना रोया है—मनमें सोचा था कि शायद उसे छोड़-कर जी न सकोगे—कई वर्षोंके बाद उससे जब फिर मुलाकात हुई, तब केवल यह पूछते हो—अच्छे तो हो? शायद इतनी बात भी नहीं हुई—बात ही न हुई—आन्तरिक विच्छेद हो गया। शायद राग अभि-मानवश फिर मुलाकात ही न हुई। इतना चाहे न हो—एकबार आँख की ओट होते ही--जो था, वह फिर नहीं होता। जो जाता है, वह फिर मिलता नहीं। जो टूट जाता है, वह फिर तैयार नहीं होता। मुक्तवेणीके बाद मुक्तवेणी कहीं देखी है।

भ्रमर गोविन्दलालको विदेश जाने देकर अच्छा नहीं किया। इस समय दोनों जनोंके एक साथ रहनेसे शायद मनोमालिन्य होने न पाता। बाद विवादमें असली बांद सामने आ जाती। भ्रमरको इतना भ्रम न होता। इतना क्रोध भी न होता। क्रोधसे सर्वनाश भी न होता।

गोविन्दलालके स्वदेश-यात्रा करनेपर नायबने कृष्णकान्तको पत्र लिख दिया कि आज मझले बाबूने घरके लिये यात्रा की। यह पत्र डाकसे आया। नौकाकी अपेक्षा डाक पहले आ जाती है। गोविन्द-लालके घर पहुंचनेके चार-पाँच दिन पहले ही कृष्णकान्तके पास

नायबका पत्र पहुंच गया। भूमरने सुना कि पति आ रहे हैं। उसी समय भूमर फिर पत्र लिखने बैठी। चार-पांच कागज रद्दी कर दो चार घण्टोंके बाद एक पत्र लिखकर तैयार हुआ। इस पत्रमें उसके माताको लिखा था,—"मैं बहुत बीमार पड़ गयी हूं। तुमलोग यदि एक बार मुझे लिवा जाओ तो मैं आराम हो जाऊंगी। देर न करना, रोग हट जाने पर फिर आराम न होगा। हो सके तो कल ही आदमी भेजना। यहां बीमारीको बात प्रकट न करना। इस पत्रको लिखकर गुप्त रूपसे क्षीरि मजदूरनो द्वारा आदमी ठीक करा-कर भूमरने पित्रालय भेजवा दिया।

यदि माँके बदले और कोई आदमी होता तो पत्र पढ़ते ही समझ जाता कि इसके अन्दर कोई गोलमाल है। लेकिन माँ, बेटीकी बीमारीकी हाल पढ़कर एकदम घबरा उठी। भ्रमरकी सासको एक लाख गाली देकर स्वामी पर भी बिगड़ी और रो-धो-कर पक्का किया कि आगामी कल नौकर, पालकी लेकर मजदूनियोंके साथ भ्रमरको लेने जायँ। भ्रमरके पितने कृष्णकान्तको पत्र लिखा। चालाकीसे भ्रमरको बीमारीका कोई हाल न लिखकर लिखा कि—"भ्रमरकी माँ बहुत बीमार हो गई है—भ्रमरको एक बार देखनेके लिये भेज दीजिये। दास-दासियोंको भी इसी तरह सीखा-पढ़ा दिया।

कृष्णकान्त बड़े विपद्में पड़े। इधर गोविन्दलाल आ रहे हैं—ऐसे समय भ्रमरको पित्रालय भेजना उचित नहीं। उधर भ्रमरकी

माता बीमार हैं—न भेजनेसे भी नहीं चलता। आगा-पीछा सोच-कर वृद्धने चार दिनोंके लिये भ्रमरको भेज दिया।

इधर गोविन्दलाल आ पहुंचे। सुना कि भ्रमर पित्रालय गई है, आज उसे लिवानेके लिये पालकी जायगी। गोविन्दलाल सब समझ गये। मन-ही-मन बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने मनमें सोचा,—"इतना अविश्वास! न पूछा, न समझा मुझे छोड़कर चली गई। मैं अब उस भ्रमरका मुंह न देखूंगा। भ्रमर जिसकी न होगी, क्या वह जिन्दा न रहेगा?

यह सोचकर गोविन्दलालने भ्रमरको बुलवानेके लिये मातासे मना कर दिया। क्यों मना किया, यह प्रकट न किया। उनकी राय पाकर फिर बहूको बुलानेकी कृष्णकान्तने कोई कोशिश न की।

—o*o—

पचीसवां परिच्छेद

इस तरह दो-चार दिन बीत गये। न तो भ्रमरको कोई लेने ही गया और न भ्रमर खुद आई ही। गोविन्दलालने सोचा कि भ्रमरकी स्पर्द्धा बढ़ गयी है, उसे थोड़ा रुलाऊंगा। भ्रमरने बड़े अविचारका काम किया है, थोड़ा रुलाऊंगा। पहले तो एक-एक कमरेको शून्य देखकर खुद रोये। भ्रमरके साथ झगड़ा है, यह सोचकर रोये। भ्रमरके अविश्वासका ख़याल कर रोये। फिर, आँखोंके आँसू पोंछकर क्रोधमें आये। क्रोधावेशमें भ्रमरको भूलनेकी चेष्टा करने लगे। लेकिन क्या मजाल है कि भूल सकें? सुख

चला जाता है, लेकिन स्मृति नहीं जाती। घाव अच्छा हो जाता है, लेकिन घावका दाग नहीं मिटता। मनुष्य मर जाता है; परन्तु नाम रह जाता है।

अन्तमें गोविन्दलालने बेवकूफी कर सोचा कि भ्रमरको भूलनेकी सबसे बढ़िया राह है, रोहिणीका ध्यान। रोहिणीकी अलौकिक रूपप्रभाने एक दिनके लिये भी गोविन्दलालके हृदयको परित्याग किया न था। गोविन्दलाल जबर्दस्ती उसे अपने हृदयसे हटाते थे, लेकिन वह हटती न थी। उपन्यासोंमें पढ़ा है कि किसी घरमें भूतका दौरात्म्य हुआ, भूत दिन-रात ताक-झाँक लगाये रहता है; लेकिन ओझा उसे भगा देता है। प्रेतिनी रोहिणी उसी तरह गोविन्दलालके हृदयमें जबर्दस्ती आकर बैठती है और गोविन्दलाल उसे भगा दिया करते हैं। जैसे जलतलमें चन्द्र-सूर्य नहीं, बल्कि उनकी छाया रहती है, वैसे ही गोविन्दलालके हृदयमें हमेशा रोहिणी नहीं, बल्कि उसकी छाया बनी रहती है। गोविन्दलालने सोचा कि यदि भ्रमरको भूलना है, तो रोहिणीका ख्याल करना पड़ेगा—अन्यथा यह दुःख भुलाया जा नहीं सकता। अनेक कुचिकित्सक मामूली रोगके लिये भयानक विषका प्रयोग किया करते हैं। गोविन्दलाल भी मामूली रोगके उपशमके लिये भयानक विष-प्रयोगमें प्रवृत्त हुए। गोविन्दलाल स्वयं अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मारने को तैयार हुए।

रोहिणीकी बात पहले स्मृतिमात्र थी, बादमें दुःखमें परिणत हो गई। दुःख-वासनामें परिणत हुआ। गोविन्दलाल उसी

वारुणीतट पर पुष्पलताओंसे घिरे हुए मण्डपके नीचे बैठकर वासनाका अनुताप कर रहे थे। वर्षाकाल था। आकाश बादलोंसे घिरा हुआ था। वर्षा कभी तेज हो जाती थी, तो कभी धीमी। लेकिन बन्द हुई न थी। सन्ध्या प्रायः हो चली थी। एकतो शामके समयका अन्धेरा, दूसरे बादलोंके घिरे रहनेके कारण वारुणीतट दिखाई पड़ता न था। गोविन्दलालको धुंधले रूपमें दिखाई दिया कि एक स्त्री घाट पर उतर रही है। रोहिणीका वहां पहुंचना गोविन्दलालके मनके अनुरूप हुआ। वर्षाके कारण घाट पर बड़ी फिसलन हो गयी है—पैर फिसल जानेसे पानीमें गिरने पर स्त्री विपदमें पड़ सकती है, यह सोचकर गोविन्दलाल कुछ व्यस्त हुए। मण्डपसे ही बैठे-बैठे उन्होंने आवाज लगाई—"कौन है भाई। आज घाट पर न उतरना, बड़ी फिसलन है, गिर पड़ोगी।"

नहीं कह सकते कि स्त्रीने उनकी बात स्पष्टतया सुनी या नहीं। पानी बरस रहा था, मालूम होता है, वर्षाके आवाजके कारण स्त्रीने मजेमें बात सुनी नहीं। उसने अपनी कलसी बगलसे उतार कर घाट पर झुकाई और इनके बाद फिर सीढ़ियां चढ़ने लगी। वह धीरे-धीरे गोबिन्दलालके पुष्पोद्यानकी तरफ बढ़ी। उद्यानका दरवाजा खोलकर उसने उसमें प्रवेश किया। इसके बाद वह गोविन्दलालके पास मण्डपमें पहुंच गयी। गोविन्दलालने देखा, सामने रोहिणी है।

गोविन्दलालने कहा—"भींगती हुई यहां क्यों; रोहणी ?"

रो०—आपने क्या मुझे बुलाया है ?

गो०—बुलाया नहीं था। घाट पर बड़ी फिसलन है, उतरनेके लिये मना कर रहा था। खड़ी-खड़ी भींगती क्यों हो ?

रोहिणी साहस पाकर मण्डपमें आगयी। गोविन्दलालने कहा,—"लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे ?"

रो०—जो कहना है, अभी कहती हूं। आपसे एक दिन कहूंगी, इसलिये बड़े कोशिशमें थी।

गो०—मुझे भी इस सम्बन्धमें अनेक बातें पूछनी है। यह बात किसने उड़ाई ? तुम लोग भ्रमरको क्यों दोष देती हो ?

रो०—सब बात बताती हूं. लेकिन यहाँ खड़ी-खड़ी कहूं क्या ?

गो०—नहीं; मेरे साथ आओ।

यह कह-कर गोविन्दलाल रोहिणीको बुला कर बगीचेके बैठक-खानेमें ले गये।

वहां इन लोगोंमें जिस तरह बातें हुईं, उसका यहां परिचय देनेकी हमारी प्रवृत्ति नहीं है। केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि उस रात अपने घर लौटनेसे पहले रोहिणी यह समझ गयी कि गोविन्दलाल उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हैं।

——:०:——

छब्बीसवां परिच्छेद

सौन्दर्य पर मुग्ध ? कौन किसके सौन्ददर्यपर मुग्ध नहीं है। मैं इस हरे नीले रंग वाले प्रजापति पर मुग्ध हूं। तुम

कुसमित कामिनी शाखा पर मुग्ध हो। इसमें दोष ही क्या है? रूपतो मोहके लिये ही पैदा हुआ है।

गोविन्दलालने भी पहले इसी तरह सोचा। पापकी प्रथम सीढ़ीपर चढ़कर पुण्यात्मा भी इसी तरह सोचा करते हैं। लेकिन जैसे बाहरी जगतके बीच आकर्षण है, वैसे ही अन्तर्जगतमें भी पापका आकर्षण है, पद-पद पर पतनकी गति बढ़ती ही जाती है। गोविन्दलालका अधःपतन भी बड़ी तेजीसे हुआ, क्योंकि सौन्दर्यकी प्यासने बहुत दिनोंसे उसका हृदय सुखा दिया था। हम केवल रो सकते हैं, अधःपतनका वर्णन कर नहीं सकते।

क्रमशः कृष्णकान्तके कानों तक भी गोविन्दलाल और रोहिणीकी बात पहुंची। कृष्णकान्त दुःखी हुए। गोविन्दलालके चरित्रमें किसी तरहका कलङ्क लगने पर उन्हें बहुत दुःख होता है। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि गोविन्दलालको उपदेश देंगे लेकिन कुछ बीमार पड़ जानेके कारण कुछ न हो सका। शयनकक्ष त्यागही न पाते थे। गोविन्दलाल उन्हें देखने के लिये नित्य जाते हैं। किन्तु उस समय सेवकोंसे घिरे रहते हैं। कृष्णकान्त गोविद्न्लालको सबके सामने कुछ कह नहीं सकते थे। उधर रोगभी बढ़ने लगा। एका-एक कृष्णकान्तके मनमें हुआ कि मालूम होता है, चित्रगुप्तका लेखा पूरा हो चुका है। इस जीवनका सागर-संगम सामने है। अधिक विलम्ब होनेसे बात शायद कह भी न सकूं। एक दिन बहुत रात गये गोविन्दलाल बगीचेसे वापस आए, उसी दिन कृष्णकान्तने सोचा कि कहेंगे। गोविन्दलाल उन्हें

देखनेके लिये आये। कृष्णकान्तने अन्यन्य सबकोंको हट जानेको कहा। अन्य सबके हटने पर गोविन्दलालने कुछ अप्रतिभ होकर कहा,—"आपकी तबियत आज कैसी है ?

कृष्णकान्तने क्षीणस्वरमें कहा,—"आज तबीयत ठीक नहीं। तुम्हें इतनी रात क्यों हुई ?"

गोविन्दलालने इस बताका कोई जवाब न देकर कृष्णकान्तका हाथ पकड़ कर, उनकी नाड़ी देखी। एका-एक गोविन्दलालका मुंह सूख गया। कृष्णकान्तका जीवन प्रवाह बड़ी मन्दगति पर था। गोविन्दलालने केवल इतना ही कहा,—"मैं अभी आता हूं।"

गोविन्दलाल कृष्णकान्तके कमरेसे निकल कर सीधे कविराजके घर पहुंचे। वैद्य भी आश्चर्यमें पड़े। गोविन्दलालने कहा,—"महाशय ! जल्दी दवा लेकर चलिये, तायाजीकी तबियत अच्छी जान नहीं पड़ती।" वैद्य भी घबराकर दवा लेकर दौड़ पड़ा कृष्णकान्तके कमरेमें वैद्यके साथ गोविन्दलालने प्रवेश किया। कृष्णकान्त कुछ डरे। कविराजने नाड़ी देखी। कृष्णकान्तने पूछा, -"क्यों,कुछ शंका हो रही है ?" वैद्यने कहा,—"मनुष्य-शरीरमें कब शंका नहीं रहती ?"

कृष्णकान्त समझ गये। बोले,—"कितनी मियाद बाकी है ?"

वैद्यने उत्तर दिया, "दवा खिलानेके बाद बता सकूंगा।"

वैद्यने खरलमें दवा घिस-घास कर तैयार की और कृष्णकान्तको खानेके लिये दिया। कृष्णकान्तने औषधिकी खल हांथमें लेकर एक बार मस्तकसे लगाया इसके बाद उसे पीकदानमें गिरा दिया।

वैद्य दुखी हुआ। कृष्णकान्तने यह देख कर कहा,—"दुखी न होइये। दवा खाकर बचनेकी अवस्था अब मेरी नहीं है। औषधिकी अपेक्षा भगवन्नामसे अब मेरा उपकार होगा। तुम लोग नामोच्चारण करो, मैं सुनूंगा।

कृष्णकान्तके अतिरिक्त और किसीने भी हरिनाम न लिया। कृष्णकान्तने गोविन्दलालसे कहा,—"मेरे सिरहानेमें, दराजकी चाबी है, उसे बाहर करो।"

गोविन्दलालने तकियाके नीचेसे,ताली निकाली।

कृष्णकान्तने कहा,—"दराज खोलकर विल बाहर निकालो।"

गोविन्दलालने दराज खोलकर विल बाहर निकाला।

कृष्णकान्तने कहा,—"मेरा अपना मुहर्रिर और गांवके दस भले आदमीको बुलाओ तो?"

उसी समय बुलाये जाकर नयाब, मुहर्रिर, कारकून, चट्टोपाध्याय, मुखोपाध्याय, वन्दोपाध्याय, भट्टाचार्य' घोष, वसु, मित्र, दत्त सब कमरेमें घुसे।

कृष्णकान्तने एक मुहर्रिरको आज्ञा दी,—"मेरा विल पढ़ो।"

मुहर्रिरने विल पढ़कर समाप्त किया।

कृष्णकान्तने फिर कहा,—"वह विल फाड़ डालनाहोगा। दूसरा विल लिखो।

मुहर्रिरने पूछा,—"क्या लिखना होगा?"

कृष्णकान्त बोले,—"जिस तरह है, उसी तरह, केवल—"

"केवल क्या?"

"केवल गोविन्दलालका नाम काटकर उसकी जगह मेरे भतीजेकी बहु भ्रमरका नाम लिखो। भ्रमरके न रहने पर गोविन्द-लाल इसका आधा पायेगा।

सब निस्तब्ध रह गये। किसीने कोई बात न कही। मुहर्रिरने गोविन्दलालके चेहरेकी तरफ देखा। गोविन्दलालने इशारा किया,—"लिखो"

मुहर्रिरने लिखना शुरू किया। लिखना समाप्त होने पर कृष्ण-कान्तने हस्ताक्षर किया। गवाहोंने अपने दस्तखत बनाये। गोवि-न्दलालने स्वंय उपयाचक होकर विल लेकर उसपर अपना हस्ता-क्षर बना दिया।

विलमें गोविन्दलालको एक कौड़ी भी नहीं—भ्रमरको आधा हिस्सा

उसी रात भगवन्न नाम उच्चारण करते हुए तुलसी चौरे पर कृष्णकान्तने अपना देहत्याग कर परलोक गमन किया।

——:o:——

सत्ताईसवां परिच्छेद।

कृष्णकान्तकी मृत्युकी खबर पाकर देशके लोगोंमें बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। किसीने कहा,—"एक इन्द्रका अन्त हुआ।" किसी ने कहा,—"एक दिगपाल मर गया।" किसीने कहा,—"पर्वत-शिखर टूट गया।" कृष्णकान्त विषयी अवश्य थे; किन्तु थे अच्छे आदमी। गरीबों और ब्राह्मणोंको यथेष्ट दान दिया करते थे। अतः अनेक लोग उनके लिये कातर हुए।

सबसे अधिक भ्रमर। अब काम पड़नेपर भ्रमरको बुलाना ही पड़ा। कृष्णकान्तकी मृत्युके दूसरे दिन गोविन्दलालकी माताने इन्तजाम कर बहूको बुलानेके लिये आदमी भेजा। भ्रमरने आकर कृष्णकान्तके लिये रोना शुरू किया।

यह मैं नहीं बता सकता कि गोविन्दलाल और भ्रमरकी पहली मुलाकातमें रोहिणीको लेकर कोई महाकाण्डकी सम्भावना है या नहीं। फिर भी, कृष्णकान्तकी मृत्युके कारण वह सारी बातें दबी रह गयीं।

भ्रमरके साथ गोविन्दलालकी जब पहली मुलाकात हुई, तो उस समय भ्रमर अपने ससुरके लिये रो रही थी। गोविन्दलालको देखकर वह और भी रोने लगी। गोविन्दलालने भी आंसू बहाये।

अतएव जिस महाकाण्डकी आशंका थी, वह जाती रही। दोनों ने ही यह समझ लिया। दोनोंने ही अपने मनमें स्थिर किया कि जब पहली मुलाकातमें ही कोई बात न कही, तो अब उठानेकी जरूरत भी नहीं—महाकाण्डका यह समय नहीं, अर्थात् कृष्णकान्त का श्राद्ध कर्म हो जाय, तो जिसके मनमें जो है, वह होगा। यही सोचकर एक दिन उपयुक्त समय पाकर गोविन्दलालने भ्रमरसे कहा,—"भ्रमर! तुमसे मुझे बहुसी बातें कहनी हैं। बातें करनेमें मेरी छाती फट जायगी। पितृशोकसे भी बढ़कर जो शोक हो सकता है, आज मैं उसीसे कातर हूं। अतः इस समय वह बातें मैं उठा नहीं सकता। श्राद्धके बाद जो कुछ कहना होगा, कहूंगा। इस बीच वह प्रसंग उठानेकी जरूरत नहीं।"

भ्रमरने भी बड़े कष्टसे आंखोंके आंसू रोककर कल्प परिचित देवता, काली, दुर्गा, शिव, हरिका स्मरण कर कहा,--"इसे भी कुछ कहना है। जब अवकाश मिले तो पूछना।"

और कोई बात न हुई। जिस तरह दिन बीतते हैं, वैसे ही बीतने लगे। हां, देखनेमें तो उसी तरह कटने लगे, लेकिन दास-दासी, गृहिणी, पड़ोसी आत्मीय-स्वजन कोई भी यह जान न सका कि आकाशमें मेघ छा गये हैं, कुसुममें कीड़ेने प्रवेश किया है, इस चारू प्रेम-प्रतिमामें घुन लग गया है। वस्तुतः घुन लग गये थे। जो पहले था, आज वह नहीं है। जो हंसी पहले थी, आज वह हंसी नहीं है। क्या भ्रमर नहीं हंसती? गोविन्दलाल क्या नहीं हंसते? हंसते हैं, लेकिन उस हंसीमें वह पहलेका-सा मजा न रहा। आंखसे आंख मिलते ही जो हंसी आपसे आप उछल पड़ती थी, वह हंसी अब नहीं है। जिस हंसीमें आधी प्रीति और आधी हंसी रहती थी, वह अब नहीं है। जिस हंसीके बलसे संसार सुखी है, जिसके अर्धांशसे लोग सुखी हैं-अर्धांशसे कहते हैं, इच्छा पूरी नहीं हुई-अब वह हंसी नहीं है। अब वह कटाक्ष भी नहीं—जिस कटाक्षको देखकर भ्रमर सोचती थी,—"इतना रूप!"—जिस दृष्टिको देखकर गोविन्दलाल सोचते,-"इतना गुण!" वह दृष्टि अब नहीं है। जिस दृष्टिमें गोविन्दलालकी स्नेहपूर्ण स्थिर दृष्टि प्रमत्त आखें देखकर भ्रमर मनमें सोचती थी कि शायद इस प्रेम-समुद्रका इस जीवनमें तैर कर पार कर नहीं सकूंगी—जिस दृष्टिको देखकर गोविन्दलाल उसका ख्याल कर संसार भूल जाते थे, वह दृष्टि अब

नहीं है। अब वह प्रिय सम्बोधन भी नहीं है-वह 'भ्रमर' 'भोमरा', 'भोमर भोम, भूमि, भूम, भों-भों'-यह सब नित्य नये, नित्य नव-स्नेहपूर्ण, सुखपूर्ण, सम्बोधन अब नहीं हैं। वह काली, काला-चन्द, कालासोपा, कालामाणिक, कालिन्दी आदि प्रिय सम्बोधन और नहीं हैं। वह आपसमें एक होना-पुकारना अब नहीं है। वह व्यर्थकी बकवाद झगड़ा-लड़ाई अब नहीं है। वह बातोंका अभिनव ठङ्ग-भी नहीं। पहले बातें समाप्त ही न होती थी-अब बातें खोजकर निकालनी पड़ती हैं। वह बातें आधी भाषासे, आधी आखोंसे, अधर-अधरपर प्रकाश पाती थीं—अब वह सब बातें छप्पर पर गयी। वह बातोंका प्रयोजन नहीं—केवल कण्ठस्वर सुननेकी स्पृहा रहती थी अब वह सब लुप्त हैं। पहले गोविन्दलाल और भ्रमरके एक जगह रहनेपर कोई खोजकर गोविन्दलालको पाता न था--कोई पुकार कर भी भ्रमरकी खबर पाता न था--वही अब एकत्र होनेपर 'बड़ी गरमी है' "कोई बुलाता है?" कहकर एक-न-एक वहांसे हट जाता है। वह सुन्दर पूर्णिमा मेघसे आवृत्त है। कार्त्तिकीय एकाको ग्रहण लग गया है। किसने उस सोनेमें जस्तेकी खाद मिला दी--किसने उस मिले हुए स्वरका तार तोड़ दिया है?

अब उस मध्याह्न रतिकर प्रफुल्ल हृदयमें अन्धेरा हो गया है। गोविन्दलाल उस अन्धकारको दूर करनेके लिए, प्रकाशके लिये रोहिणीका चिन्तन करते थे-भ्रमर उस अन्धकारको मिटानेके लिये यमका चिन्तन करती थी। हे यम! तुम्ही निराश्रयके आश्रय, जगत के एकमात्र गति, प्रेमशून्यके लिये प्रीतिकारण हो! चित्त प्रफुल्ल

करने वाले, दुख दूर करने वाले, विपदभंजन, दीनरंजन तुम्हीं हो, यम ! निराशाकी आशा, अप्रेमीके प्रेमी, तुम्हीं हो यम, हे यम ! भ्रमरको ग्रहण करो।

——:o:——

अट्ठाइसवां परिच्छेद

इसके बाद कृष्णकान्त रायका श्राद्ध धूमधामसे हो गया। शत्रुओं ने कहा,–'हां, घटा घिरी, पांच-सात दस हजार रुपये उड़ गये।" मित्र लोगोंने कहा,--'एक लाख रुपये खर्च हुए।" कृष्णकान्तके उत्तराधिकारियोंने अपने मित्रोंसे कहा,–'लगभग पचास हजार रुपये खर्च हुए हैं। हमने खाता देखा है। कुल व्यय ३२३५६।-)॥ है।

जो हो, कई दिन बड़े झंझटमें कटे हरलाल श्राद्धाधिकारी थे, उन्हींने आकर श्राद्ध किया। कई दिन मक्खियोंकी भनभनाहटमें, तेजपत्तेकी झलझलाहटसे, कंगालोंके कोलाहलसे, नैयायिकोंके विचार से गांवमें कान नहीं दिया जाता था। सन्देश मिठाईकी बाढ़, कंगालों की बाढ़, रामनामी छापेचादरकी बाढ़, कुटुम्बके कुटुम्ब, उसके कुटुम्ब, उसके भी कुटुम्ब वालोंकी बाढ़ थी। लड़कोंने मोतीचूर लड्डू लेकर गेंद खेलना शुरू किया, स्त्रियोंने नारियलके तेलकी कमी देखकर पूरीके घी बालोंमें लगाना शुरू किया; होटलवालोंका होटल बन्द होगया, सब मांसखोर फलाहारी हो गये; शराबकी दूकान बन्द हो गयी, सब शराबी रामनामी ओढ़कर दक्षिणा लेनेके लिये पहुंच गये। चावलका अकाल पड़ गया; केवल अन्न व्ययही

नहीं; इतना मैदा खर्च हुआ कि चावलके बिना लोगोंका काम नहीं चलता। इतना घीका खर्च बाजारमें केष्टर आयल कम हो गया। अहीरोंके यहां दूध लेने जाने पर वे कहते थे,—"हमलोग का दूध ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे दही बन गया है।"

किसी तरह श्राद्धको झंझट समाप्त हुआ। विल पढ़े जानेकी सलाह हुई। विल पढ़ कर हरलालने देखा, कि विलमें बहुतसे गवाह हैं—किसी तरहकी जालसाजीकी गुंजायस नहीं है। हरलाल श्राद्ध समाप्त होने पर अपने स्थानको लौट गये।

विल पढ़ने-सुननेके बाद गोविन्दलालने भ्रमरसे कहा,—"विलकी बात सुनी ?"

भ्रमर—क्या ?

गो०—तुम्हारे नाम आधी सम्पत्ति है।

भ्र०—मेरा नहीं—तुम्हारा है।

गो०—अब हमारे तुम्हारेमें कुछ फर्क पड़ गया है। मेरा नहीं तुम्हारा है।

भ्र०—यह होनेसे ही तो तुम्हारा हुआ।

गो०—तुम्हारे धनका मैं भोग कर नहीं सकता।

भ्रमरको बड़ी रुलाई आयी। लेकिन भ्रमरने अहङ्कारके वशीभूत होकर रुलाई पीकर कहा,—"तब क्या करोगे ?"

गो०—जिससे दो पैसा कमा सकूं, वही करूंगा।

भ्र०—वह क्या ?

गो०—देश-विदेश घूमकर नौकरीकी चेष्टा करूंगा।

भ्र०—सम्पत्ति मेरे बड़े ससुरकी नहीं है, मेरे ससुरकी है। तुम्हीं उनके उत्तराधिकारी हो, मैं नहीं हूं। बड़े ससुरको विल करने का कोई अधिकार ही नहीं था। विल नाजायज है। मेरे पिताने श्राद्धके समय आकर यह बात मुझे समझा दी है। सम्पत्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं।

गो०—मेरे ताया झूठे नहीं थे। सम्पत्ति तुम्हारी है—मेरी नहीं। उन्होंने जब तुम्हारे नाम लिख दिया है, तो सम्पत्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं।

भ्र०—यदि तुम्हें यह सन्देह हो, तो मैं सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिख दें सकती हूं।

गो०—तुम्हारा दान लेकर जीवन-धारण करना पड़ेगा, मुझे।

भ्र०—इसमें हर्ज ही क्या है? मैं तुम्हारी दासानुदासी नहीं हूं क्या?

गो०—आजकल यह बातें शोभा नहीं देती हैं, भ्रमर!

भ्र०—मैंने क्या किया है? मैं तुम्हें छोड़कर इस संसारमें और किसीको नहीं जानती। आठ वर्षकी उम्रमें मेरी शादी हुई थी—आज सत्रह वर्षकी हुई हूं। इन नौ वर्षोंमें मैं और कुछ नहीं जानती—जानती हूं, तो केवल तुम्हें। मैं तुम्हारे द्वारा प्रतिपालित हूं—तुम्हारे खेलकी खिलौना हूं—मुझसे क्या अपराध हुआ है?

गो०—मनमें सोचकर देखो।

भ्र०—असमयमें पित्रालय चली गयी थी—गलती हुई है—मुझसे लाखों अपराध हुए हैं—मुझे क्षमा करो। मैं और कुछ नहीं

जानती, सिर्फ तुम्हें जानती हूं—इसलिये मनमें अभिमान आ गया था।

गोविन्दलाल चुप रहे। उनके सामने आलुलायित-कुन्तला, अश्रुलोचना, विवशा, कातरा, मुग्धा, पैरोंपर लोटती हुई वह सत्रह वर्षीया सहधर्मिणी थी। गोविन्दलाल चुप रह गये। गोविन्दलाल मनमें सोच रहे थे,—"यह काली है! रोहिणी कितनी सुन्दरी है! इसके पास गुण हैं—रोहिणीके पास रूप है। इतने दिनों तक गुण की सेवा की है—कुछ दिनों रूपकी सेवा करूंगा। अपना यह असार, आशाशून्य, प्रयोजनशून्य जीवन इच्छानुसार बिताऊंगा। मिट्टीके घड़ेको जिस दिन चाहूंगा, तोड़ डालूंगा।"

भ्रमर पैर पकड़कर रो रही है—"क्षमा करो! मैं बालिका हूं!"

—जो अनन्त सुख-दुःखके विधायक हैं; जो अन्तर्यामी कातरके बन्धु हैं, अवश्य उन्होंने इन बातोंको सुना, लेकिन गोविन्दलालने न सुना। चुप रह गये। गोविन्दलाल रोहिणीका ध्यान कर रहे थे। तीव्र ज्योतिर्मयी, अनन्त प्रभाशालिनी, प्रभात शुक्रतारा रूपिणी, रूप-तरङ्गिणी चञ्चला रोहिणीका ध्यान कर रहे थे।

भ्रमरने उत्तर न पाकर कहा,—"क्या कहते हो?"

गोविन्दलालने कहा,—"मैं तुम्हारा परित्याग करूंगा।"

भ्रमरने पैर छोड़ दिया। वह उठी। बाहर जा रही थी। चौकठासे ठोकर खाकर गिरकर बेहोश हो गयी।

——:o:——

उनतीसवां परिच्छेद

"मैंने क्या अपराध किया है कि मुझे त्याग दोगे?"

यह बात भ्रमर गोविन्दलालके सामने कह न सकी। लेकिन इस घटनाके बाद हर क्षण वह अपने मनसे पूछने लगी,—"मेरा क्या अपराध है ?"

गोविन्दलाल भी मन-ही-मन अनुसन्धान करने लगे—"भ्रमर का क्या दोष है ?" भ्रमरसे जो विशेष बड़ा अपराध हुआ है, वह गोविन्दलालके मनमें एक तरहसे बैठ गया है। लेकिन अपराध क्या है, यह खोजकर भी पा न सके। सोचनेपर मनमें विचार उठता कि भ्रमरने अपने मनमें मेरे प्रति जो अविश्वास किया है, अविश्वास करके ही जो इतना कठिन पत्र मुझे लिखा था—एक बार उनसे सत्य-मिथ्याके बारेमें पूछा भी नहीं, यही अपराध है। जिसके लिये इतना किया, इतना सहज ही उसने मुझपर अविश्वास किया, यही उसका अपराध है। हमने कुमति-सुमतिकी बात पहले ही लिखी है। गोविन्दलालके हृदयमें पास-पास बैठकर दोनोंमें जो तर्क-वितर्क हो रहे हैं, उसे सुनाता हूं।"

कुमतिने कहा,—"भ्रमरका पहला अपराध यही है कि उसने अविश्वास किया।"

सुमतिने उत्तर दिया,—"जो अविश्वासके योग्य हैं, उसपर क्यों न अविश्वास होगा ? तुम रोहिणीके साथ आन्योपभोग कर रहे हो, भ्रमरने इसे ही सोचकर सन्देह किया था, क्या यही उसका दोष है ?

कुमति—अब न मैं दोषी हुआ हूं, लेकिन भ्रमरने जिस समय अविश्वास किया था, उस समय तो मैं निर्दोष था।

सुमति—दो दिन आगे-पीछेसे क्या आता जाता है ? दोष तो

किया न ! जो दोष करनेमें सक्षम है, उसे दोषी करार देना क्या भारी अपराध है ?

कुमति—भ्रमरने मुझे दोषी ठहराया, इसी लिये मैं दोषी हो गया—साहुको चोर बना देनेसे वह चोर हो जाता है।

सुमति – दोष जो चोर कहे उसका है ! जो चोरी करता है, उसका नहीं ! वाह !

कुमति—तेरे साथ झगड़ा करके मैं पार न पाऊंगी। देखो न, भ्रमरने मेरा कैसा अपमान किया है। मैं विदेशसे आ रहा हूं, यह सुनकर बापके घर चली गयी।

सुमति—उसने जो कुछ सोचा था, उसमें यदि उसका विश्वास दृढ़ था, तो ऐसी हालतमें उसने कुछ बुरा न किया। स्वामीके वेश्या-गामी हो जानेपर नारी देह धारण करने वाली कौन धर्म-पत्नी होगी, जो क्रोध न करेगी ?

कुमति—यह विश्वास ही तो उसका भ्रम है—और दोष ही क्या है ?

सुमति—यह बात क्या कभी उससे पूछी ?

कुमति—नहीं।

सुमति—तुम बिना पूछे क्रोध करती हो, और भ्रमर नितान्त बालिका है, बिना पूछे ही क्रोधका इतना बड़ा हुल्लड़ ? यह व्यर्थ की बातें हैं; असली रोगका कारण बताऊं ?

कुमती—क्या कहो न ?

सुमति—असली जड़ रोहिणी है। रोहिणीमें ही प्राण बसा हुआ है—इसलिये काली भ्रमर अब अच्छी नहीं लगती है।

कुमति—इतने दिनों तक भूमर कैसे अच्छी लगी ?

सुमति—उस समय तक रोहिणी मिली न थी। एक ही दिनमें तो कुछ हो नहीं जाता। समय पर सब बातें होती है। आज धूप निकलीं हुई है, इसलिये कल दुर्दिन हो नहीं सकता ? केवल यही नहीं-और भी कुछ है।

कुमति—और क्या ?

सुमति—कृष्णकान्तका विल। बूढ़ा-मन-ही-मन जानता था कि सम्पत्ति भूमरके नाम लिखनेके माने भी यही है कि वह गोविंदलालकी है। यह भी जानते थे कि भूमर उस सम्पत्तिको एक महीनेके अन्दर लिख देगी। लेकिन अन्ततः तुम्हें दुष्ट कुपथगामी देखकर चरित्रसुधारनेके लिये तुम्हें भूमरके अंचलमें बाँध गये। और तुम इतनी सी बात न समझ कर भूमरके ऊपर क्रोध कर रहे हो।

कुमति—यह ठीक है। लेकिन क्या मैं स्त्रीका दिया धन खाऊंगा ?

सुमति—सम्पत्ति तो तुम्हारी ही है। भूमरसे तुम क्यों नहीं अपने नाम करा लेते ?

कुमति—वही तो कहता हूं, क्या स्त्रीके दानपर जीवन-धारण करूं ?

सुमति—अरे, बापरे ! बड़े भारी पुरुषसिंह हो ? तो भूमरके साथ मुकदमा करके डिग्री क्यों नहीं करा लेते ? सम्पत्ति तो तुम्हारी पैतृक है ही।

कुमति—स्त्रीके साथ मुकदमेंबाजी करूं ?

सुमति—और क्या करोगे ? बाजार जाओ-बाजार।

कुमति—इसी चेष्टामें तो हूं।

सुमति—रोहिणी साथ जायगी न ?

इसपर सुमति-कुमतिमें खूब झोंटा-झोंटी और घूंसी-घूसा हुआ।

—:o:—

तीसवां परिच्छेद

मेरा ऐसा विश्वास है कि गोविंदलालकी माता यदि पक्की गृहिणी होतीं तो फूंक मात्रसे इस काले मेघको उड़ा देतीं। वह समझ गयी थीं कि बहूके साथ बेटेका आन्तरिक कलह हो गया है। स्त्रियां यह सहज ही समझ जाती हैं। यदि इस समय वह अपने सदुपदेश, स्नेह वाक्यका और स्त्री सुलभ चातुर्यसे काम लेतीं और इसका प्रतीकार करना चाहतीं तो अवश्य सुफल दिखाई देता। लेकिन गोबिन्दलालकी माता पक्की गृहिणी नहीं हैं; विशेषतः पुत्र वधूके सम्पत्तिकी अधिकारणी बन जानेपर कुछ स्वयं जल उठी थीं। भ्रमर पर उनका वह स्नेह ही नहीं था तो वह भ्रमरकी भलाई कैसे चाह सकती थीं ? पुत्र के रहते हुए धनकी मालिका बहू हुई, यह उन्हें असह्य हो गया। उन्होंने एक बार भी अनुरोध न किया कि भ्रमर और गोविन्दलालकी सम्पत्ति परस्परके लिये अभिन्न है, विशेषतः गोविन्दलालके चरित्र-दोषके कारण ही उन्हें दण्ड देनेके लिये कृष्णकान्तरायने ऐसा किया। उन्होंने एक बार भी यह न समझा कि वृद्धावस्थामें कृष्णकान्तके विकृतबुद्धि होनेके कारण यह अनुचित वह कर गये हैं। उन्होंने सोचा कि बहुके मालकिन होने पर केवल खाने-पहरनेकी अधिकारिणी होकर

एक कुटुम्बकी तरह मुझे इस घरमें रहना पड़ेगा। अतएव उन्होंने संसार-त्याग करना ही श्रेयस्कर समझा। एक तो पतिहिना, कुछ आत्मपरायणा भी, दूसरे पुत्र-स्नेहके कारण, पति बियोगके समयसे ही काशीबासकी इच्छुक होकर भी जा न सकीं। इस समय वह वासना और भी प्रबल हुई।

उन्होंने गोविन्दलालसे कहा,—"मालिकोंने एक-एक कर स्वर्गका रास्ता लिया, अब मेरा भी समय समीप आ गया है। इस समय तुम पुत्रका कर्त्तव्यपालन करो, मुझे काशी भेज दो।

गोविन्दलाल भी एकाएक इस प्रस्तावपर सहमत हो गये। बोले,—"चलो मैं तुम्हें स्वयं काशी पहुंचा आऊंगा।" दुर्भाग्यवश—इस समय भ्रमर एकबार पित्रालय गयी थी। किसीने उन्हें मना न किया। अतएव भ्रमरकी अनुपस्थितिमें ही गोविन्दलाल काशी यत्राकी सारी तैयारी करने लगे। उनकी अपने नाम कुछ संम्पत्ति थी, उसे उन्होंने बेचकर चुपचाप कुछ धन संचय किहा। स्वर्ण, हीरा इत्यादि जितनी मूल्यवान सम्पत्ति थी, सब उन्होंने बेच डाला। इस तरह कुल कोई एक लाख रुपये संग्रहीत हुये। गोविन्दलालने इसीके द्वारा भविष्य जीवन बितानेका निश्चय किया।

इसके बाद माताके साथ काशी यात्राका दिन स्थिर कर उन्होंने भ्रमरको बुलावा भेजा। सास काशीबास करेंगी यह सुनकर भ्रमर तुरत आई और उसने सासके पैरोंपर गिरकर रोते हुए कहा,—"मां मैं बालिका हूं—मुझे अकेली छोड़कर न जाओ—मैं संसार-धर्म आदि कुछ नहीं जानती। मां यह संसार समुद्र है, मुझे इसमें अकेली डुबा-

कर न जाओ।" सासने कहा-"तुम्हारी बड़ी नन्द है। मेरी ही तरह वह तुम्हारा ख्याल रखेगी—और अब तुम भी गृहिणी हुई।" भ्रमर कुछ न समझ सकी केवल रोती रही।

भ्रमरने देखा सामने महा विपद् है। सास त्याग कर जा रही है मेरे पति भी उन्हें पहुंचानेके लिये जा रहें हैं—वह भी पहुंचाने जाकर शायद फिर न लौटेंगे। भ्रमर गोविन्दलालके पैर पकड़ कर फूट फूटकर रोने लगी। बोली,--"बता जाओ, कितने दिनोंमें लौटोगे?"

गोविन्दलालने कहा,—"कह नहीं सकता। लौटनेकी इच्छा तो नहीं है।"

भ्रमर पैर छोड़कर उठकर खड़ी हो गयी। उसने मनमें सोचा, "डर काहेका है? जहर खा लूंगी।"

इसके बाद स्थिर किया हुआ यात्राका दिन आ गया। पालकी द्वारा हरिद्राग्रामके कुछ दूर जानेपर ट्रेन मिलती है। शुभ यात्राका लग्न उपस्थित हुआ—सब तैयार हो गये। सबेरे ही सबेरे, सन्दूक बिस्तर, बाक्स, बेग, गाठरी मजदूरे ढोने लगे। साथमें जानेवाले दास-दासी धुले वस्त्र पहनकर दरवाजाके पास खड़े हो पान खा रहे थे। दरबानोंने अपनी पोशाक पहन कर लाठी हाथमें लेकर पालकी ढोनेवाले कहारोंपर रोब जमाना शुरू किया। महल्लेके बच्चे और स्त्रियां देखनेके लिये आ जमीं। गोविन्दलालकी माताने गृह-देवताओंको प्रणामकर, गांव वालोंसे यथायोग्य सम्भाषण कर रोते-रोते शिविकारोहण किया। सम्बन्धी पड़ोसी सभी रोने लगे। वह पालकीपर चढ़कर आगे बढ़ीं।

इधर गोविन्दलालने अन्यान्य लोगोंसे प्रिय-सम्भाषण कर शयनगृहमें भ्रमरसे विदा होनेके लिये चले। भ्रमरको रोते हुए हिच-कियां भरते देखकर वह जो कहने आये थे, कह न सके, केवल इतना ही कहा,—"भ्रमर ! मैं माँको पहुंचाने जा रहा हूं।"

भ्रमरने बड़े कष्टसे अपनी आंखोंसे आंसू पोंछकर कहा,—'मां वहां रहेंगी। तुम क्या लौटकर आओगे ?"

भ्रमरने उपर्युक्त प्रश्न जब किया, तो उसकी आंखोंके आंसू सूख गये थे; उसके स्वरमें दृढ़ता, गम्भीरता, उसके होठोंपर दृढ़ प्रतिज्ञाको देखकर गोविन्दलाल कुछ अचरजमें आये। एकाएक कोई जवाब दे न सके। भ्रमरने पतिको चुप देखकर फिर कहा,—'देखो, तुम्हींने मुझे सिखाया था कि सत्य ही एकमात्र धर्म है, सत्य ही एकमात्र सुख। आज तुम मुझसे सच कहो, मैं तुम्हारी आश्रित बालिका हूं—मुझे आज धोका न देना—बोलो कब आओगे ?"

गोविन्दलालने जवाब दिया,—'तो फिर सच ही सुन लो। मेरी लौटनेकी इच्छा नहीं है।"

भ्रमर—क्यों इच्छा नहीं—क्या यह बता जाओगे ?

गो०—यहां रहनेसे तुम्हारा अन्नदास होकर रहना पड़ेगा।

भ्रमर—तो इसमें हर्ज क्या है ? मैं तो तुम्हारी दासीकी भी दासी हूं।

गो०—मेरी दासानुदासी भ्रमर मेरे विदेशसे लौटनेकी प्रतीक्षामें खिड़कीपर बैठी रहेगी। ऐसे समय पित्रालय न चली जायगी।

भ्रमर—इसके लिये कितना पैर पड़ चुकी हूं—क्या एक अप-राध क्षमा नहीं किया जा सकता है ?

गो०—उस तरहके अब सैकड़ों अपराध होंगे। तुम अब सम्पत्तिकी मालिका हो।

भ्रमर—यह बात नहीं। मैं इस बार बापके घर जाकर, पिता की सहायतासे जो कर आयी हूं, उसे देखो।

यह कहकर भ्रमरने एक कागज दिया। उसे गोविन्दलालके हाथमें देकर कहा,—'पढ़ो।'

गोविन्दलालने पढ़कर देखा—दानपत्र है। भ्रमर उचित मूल्य के स्टैम्पपर अपनी सारी सम्पत्ति गोविन्दलालको दान करती है। उसकी रजिस्ट्री हो चुकी है। गोविन्दलालने उसे पढ़कर कहा,—

'तुम्हारे योग्य कार्य जो था, उसे तुमने किया है। लेकिन मेरा तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, मैं तुम्हें अलंकार दूं और तुम उसे पहनो—यह नहीं कि तुम सम्पत्ति दान करो और मैं उसका भोग करूँ।' यह कहकर गोविन्दलालने उस बहुमूल्य दान-पत्रको टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ फेंका।

भ्रमर बोली,—"पिताजीने कह दिया है, इसे फाड़ फेंकना व्यर्थ है। अदालतमें इसकी नकल मौजूद है।"

गो०—रहने दो—रहने दो। मैं चला।

भ्रमर—कब आओगे?

गो०—न आऊंगा।

भ्रमर—क्यों? मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूं; तुम्हारी शिष्या हूं; तुम्हारी आश्रिता हूं, तुम्हारे द्वारा प्रतिपालित हूं—तुम्हारी दासीकी भी दासी हूं—तुम्हारे कण्ठस्वरकी भिखारिणी हूं—क्यों न आओगे?

गो०—इच्छा न हींहै।

भ्रमर—क्या धर्म भी नहीं है ?

गो०—शायद वह भी नहीं।

बड़े कष्टसे भ्रमरने अपने आंसू रोके। दृढ़तासे आंसू पलट गये। इसके बाद भ्रमरने हाथ जोड़कर अति कम्पित कण्ठसे कहने लगी,—"तो जाओ—हो सके, तो न आना। मुझ निपराधनीका त्याग करना चाहते हो, तो करो। लेकिन याद रखना, ऊपर भगवान हैं। याद रखना, एक दिन मेरे लिये तुम्हें रोना पड़ेगा। याद रखना,—एक दिन तुम खोजोगे कि इस पृथ्वी पर अकृतिम आन्तरिका स्नेह कहां है ?-देवता साक्षी हैं ! यदी मैं सती हूंगी, कायमनोवाक्यसे तुम्हारे चरणोंमें यदि मेरी भक्ती होगी, तो मेरी तुम्हारी फिर मुलकात होगी। मैं इसी आशापर अपने प्राण रखूंगी ! अब जाओ—इच्छा हो तो कह दो—फिर न लौटूंगा। किन्तु मैं कहे रखतीं हूं—तुम फिर आओगे—तुम फिर भ्रमर कह कर बुलाओगे—फिर मेरे लिये रोओगे। यदि यह बातें निष्फल हों, तो जान लेना—देवता मिथ्या है; धर्म मिथ्या है; भ्रमर असती कुलटा है। तुम जाओ, मुझे कोई दुःख नहीं। तुम मेरे हो—रोहिणीके नहीं हो।"

यह कहकर भ्रमरने भक्तिपूर्वक पति-चरणोंमें प्रणाम कर, गजमन्थरगतिसे दूसरे कमरेमें जाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

——:०:——

इकतीसवां परिच्छेद

इस आख्यायिकाके आरम्भ होनेके पहले ही भ्रमरके पुत्र होकर

सूतिकागृहमें ही मर चुका था। भ्रमर आज दूसरे कमरेमें जाकर अपने सात दिनके उसी मृत पुत्रके लिये रोने लगी। फर्शपर लेटकर धूलमें सनती हुई अशमित निश्वास फेंकती हुई पुत्रके लिये रोने लगी। "मेरे आंखोंके पुतली, मेरे कंगालके सोना आज तुम कहाँ हो ? आज तेरे रहते किसकी हिम्मत थी कि मुझे त्याग देता। मेरी ममता तो तोड़ दी—तेरी ममता कैसे तोड़ते ? मैं कुरूपा, कुत्सिता हूं—तुझे कौन कुत्सित कहता। तुझसे बढ़कर कौन सुन्दर है ? एक बार दिखाई दे जाओ, बच्चे—इस विपदके समय भी क्या एक बार भी दिखाई न दोगे ? मर जानेपर क्या कोई फिर दिखाई नहीं देता ?"

इसके बाद भ्रमर हाथ जोड़कर ऊपर आकाशकी तरफ देखती हुई देवताओंसे पूछने लगी,—कोई मुझे बता दो, मेरे किस दोषसे, मुझे इस सत्रह वर्षकी उम्रमें ही मेरी ऐसी असम्भव दुर्दशा हुई—मेरा पुत्र मरा—मेरे स्वामीने मुझे त्याग दिया, मेरी उम्र कुल सत्रह वर्ष है—मुझे इस उम्रमें पति-प्रेम छोड़कर और कुछ न चाहिये। मुझे इहलोकमें और कोई कामना नहीं है—और कोई कामना करना सीखा ही नहीं। मैं इस सत्रह वर्षकी अवस्थामें इससे निराश क्यों हुई ?"

भ्रमरने रो-पीटकर निश्चय किया कि देवतागण नितांत निष्ठुर हैं, जब देवता ही निष्ठुर हैं, तब मनुष्य सिवा रोनेके और क्या कर सकता है ? सिर्फ रोऊंगी। भ्रमर सिर्फ रोने लगी।

इधर गोविन्दलाल भ्रमरके पाससे विदा होकर धीरे-धीरे बाहर

मकानमें आये। हम सत्य बात कहेंगे—गोविन्दलाल आंखोंके आंसू पोंछते-पोंछते बाहर आये। गोविन्दलालके मनमें आया कि उस बालिकाकी प्रीति बड़ी सरल है—अकृत्रिम, उद्वेलित बात-बातमें व्यक्त है, जिसका प्रवाह दिन-रात बहता है—भ्रमरने वही अमूल्य प्रेम पाकर गोविन्दलाल सुखी हुए थे। मनमें आया कि जिसका वह त्याग कर रहे हैं, वह फिर पृथ्वीपर प्राप्त न होगा। सोचा, अब आगे बढ़ चुका हूं--पीछे पैर रख नहीं सकता—अब तो जाना ही होगा। आज यात्रा कर रहा हूं, शायद फिर लौटना न हो सके। जो हो जब यात्राकी है, तो जाना चाहिये।

उसी समय यदि गोविन्दलाल दो पैर पीछे पलटकर भ्रमरके बन्द दरवाजेपर धक्का देकर एक बार कह देते,—"भ्रमर! मैं फिर आता हूं।" तो सब कलह मिट जाती। गोविन्दलालकी कई बार यह इच्छा हुई। इच्छा होते भी वे कर न सके। इच्छा होनेपर भी लज्जा मालूम हुई। सोचा, इतनी जल्दी काहे की है? जब इच्छा होगी, तो लौट आऊंगा। भ्रमरके सामने गोविन्दलाल अपराधी हैं। फिर भ्रमरके सामने आनेका साहस न हुआ। जो हो, कुछ निश्चय करने की बुद्धि उनकी न हुई। जिस राहपर आगे बढ़ रहे थे, उसी राहसे बढ़ने लगे। चिन्ता त्यागकर वह मोहके बाहर निकले और सजे हुए घोड़ेपर चढ़कर एँड़ लगायी। राहमें जाते-जाते रोहिणीकी रूप-राशि हृदयमें फूट पड़ी।

——:o:——

द्वितीय खण्ड

पहला परिच्छेद

पहला वर्ष

हरिद्राग्रामके मकानमें खबर आयी—गोविन्दलाल माता आदिके साथ निर्विघ्न कुशलपूर्वक काशी पहुंच गये। भ्रमरके पास कोई पत्र न आया। अभिमानवश भ्रमरने भी कोई पत्र न लिखा। पत्रादि कार्यकर्त्ताओंके पास आने लगे।

एक मास गया दो मास बीते, पत्र बराबर आता रहा। अन्तमें एक दिन खबर आया कि गोविन्दलालने काशीसे घरके लिये प्रस्थान किया है।

भ्रमर समझ गयी कि गोविन्दलालने केवल माताको धोका देने के लिये बहाना किया है, और कहीं अन्यत्र जा रहे हैं। घर आयेंगे, इसका भरोसा उसे न रहा।

इसी समय भ्रमर छिपे-छिपे सदा रोहिणीकी खबर लेती रही। रोहिणी रसोई बनाती है, खाती है, शरीर मल-मलकर साफ करती है, पानी भरती है, इसके अतिरिक्त और कोई खबर नहीं। इसके बाद ही एक दिन खबर आयी कि रोहिणी बीमार है। घरके अन्दर मुंह छिपाकर पड़ी रहती है। बाहर नहीं निकलती। ब्रह्मानन्द खुद रसोई बनाते और खाते हैं।

इसके बाद एक दिन खबर आयी कि रोहिणी कुछ अच्छी हुई है, लेकिन रोगका जड़ गया नहीं है। शूल रोग है—इसकी चिकित्सा नहीं—रोहिणी आरोग्य होनेके लिये तारकेश्वर गलेमें फांसी लगानेके

लिये जायेगी। अन्तमें खबर मिली-रोहिणी गलेमें फांसी लगानेके लिये तारकेश्वर गयी। अकेली ही गयी है—साथमें कौन जायेगा?

इधर तीन-चार महीने बीत गये, गोविन्दलाल लौटकर न आये पांच-छ महीने हुए—गोविन्दलाल लौटे नहीं। भ्रमरके रोनेका मन न था। सिर्फ मनमें यही चिन्ता रहती है, अब कहाँ हैं-कैसे हैं-खबर मिले तो जानमें जान आये। यह संवाद ही क्यों नहीं मैं पाती?

अन्तमें ननद द्वारा सासको पत्र लिखाया-आप माता हैं-अवश्य ही पुत्रका संवाद पाती होंगी। सासने उत्तरमें लिखा कि वे गोविन्द-लालकी खबर पाया करती हैं। शीघ्र ही वहांसे दूसरी जगह जायेंगे। कहीं स्थायी रूपमें ठहरते नहीं हैं।

इधर रोहिणी भी फिर न लौटी। भ्रमर सोचने लगी कि भगवान् ही जाने कि रोहिणी कहां गयी—? मैं अपने मनका सन्देह अपने मुंहसे न निकालूंगी। भ्रमर अब अधिक सह न सकी। रोते-रोते ननदसे कहकर पालकीकी सवारीसे वह अपने पिताके घर चली गयी।

वहां जाकर गोविन्दलालकी खबर पाना दुरूह समझ कर फिर लौट आयी। हरिद्राग्राम लौट कर पतिकी कोई खबर न पाकर फिर सासको पत्र लिखवाया। सासने भी इसबार लिखा कि "गोविन्द लाल अपनी कोई खबर नहीं देता। नहीं जानती कि इस समय वह कहां है। कोई खबर नहीं मिली। "पहले वर्षका अन्त होते-होते भ्रमर खाटपर पड़ गयी। अपराजिता पुष्प सूखने लगा।

दूसरा परिच्छेद

भ्रमरके बीमार पड़ जानेकी खबर पाकर भ्रमरके पिता उसे देखनेके लिये आये। भ्रमरके पिताका सविशेष परिचय हमने दिया नहीं है। अब देता हूं। भ्रमरके पिता माधवीनाथ सरकारकी उम्र यही कोई इकतालीस वर्ष की है। देखनेमें वह सुपुरुष हैं; लेकिन उनके चरित्रके बारेमें बड़ा मतभेद है। अनेक लोग उनकी प्रशंसा करते हैं अनेक लोगोंका कहना है कि उनके जैसा दुष्ट और कोई न होगा। उनकी चतुराईके सभी कायल हैं। साथ ही जो उनके प्रशंसक हैं, वे उनसे डरते रहते हैं।

माधवीनाथ लड़कीकी दशा देखकर बहुत रोये। उन्होंने देखा—वह श्यामा सुन्दरी, जिसके समूचे अङ्गकी गठन बड़ी ही सुललित थी--इस समय विशुद्धवदन, शीर्ण शरीर, पुष्टकण्ठास्थि, निमग्न-नयनेन्दीवर है। भ्रमर भी बहुत रोयी। अन्तमें दोनोंके रोकर चुप होनेके बाद भ्रमरने कहा,—"बाबूजी! जान पड़ता है, मेरे चलने के दिन आ गये हैं। मुझे कुछ धर्मकर्म करा दो। मेरी कम उम्र होनेसे क्या हुआ, मेरे दिन तो समाप्त हो गये हैं। समय समाप्त हो रहा है, तो देर क्यों करूं? मेरे पास बहुत रुपये हैं; मैं व्रत उपवास किया चाहती हूं। कौन यह सब करायगा? बाबूजी! तुम इसकी व्यवस्था करा दो।

माधवीनाथने कोई जवाब न दिया। असाध्य यन्त्रना हो उठने पर वह मरदानेमें आये। मरदानेमें बैठकर बहुत देर तक रोते रहे। केवल रोदन ही नहीं,—उस मर्मभेदी दुखने माधवीनाथके हृदयमें

भयङ्कर क्रोधका संचार किया। मन-ही-मन सोचने लगे,—"जिसने मेरी कन्यापर यह अत्याचार किया है, इस जगतमें उसपर क्या कोई अत्याचार करनेवाला नहीं है? सोचते-सोचते माधवीनाथके हृदयमें दुखके बदले घोर क्रोध परिव्याप्त हो गया। माधवीनाथने खूनी आँखोंसे प्रतिज्ञा की--"जिसने मेरी भ्रमरका ऐसा सत्यानाश किया है, मैं भी उसका वैसा ही सत्यानाश करूंगा।"

तब माधवीनाथने बहुत कुछ शान्त होकर अन्तःपुरमें पुनः प्रवेश किया। कन्याके पास जाकर बोले,—"बेटी! तुम व्रत-नियम की बात कह रही थी; मैं भी वही सोच रहा था। इस समय तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल है; व्रत-नियम करनेमें अनेक उपवास करने पड़ेगे। इस समय तुम उपवास सह न सकोगी। जरा शरीर ठीक हो जाने दो—"

भ्र०--यह शरीर क्या ठीक होगा?

मा०--जरूर ठीक होगा, बेटी! हुआ क्या है? तुम्हारी चिकित्सा नहीं हो पाती है फिर कैसे होगा? ससुर नहीं सास—नहीं—कोई पासमें नहीं है —कौन चिकित्सा करायगा? तुम अब मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें अपने यहां रखकर दवा कराऊंगा। मैं अभी यहां दो दिन रहूंगा—इसके बाद तुम्हें साथ ले कर राजग्राम जाऊंगा।

भ्रमरका पित्रालय राजग्राममें है।

कन्याके पाससे उठकर माधवीनाथ कन्याके कार्यकर्त अमलाओंके गोकआये। दीवानजीसे पूछा,—"बाबूजीकी कोई चिट्ठी आदि आती है?" दीवानजीने जवाबदिया,—नहीं।"

माधवीनाथ—वह इस समय कहां है ?

दीवानजी—उसकी कोई भी खबर हमलोग के पास नहीं वह कोई खबर ही नहीं भेजते ।

माधवी०—किससे यह खबर मिल सकेगी ?

दीवानजी—यह यदि मालूम होता तो हम लोग स्वयं खबर लेते । काशीमें माताजीके पाससे खबर लेनेके लिये आदमी भेजा था, —लेकिन वहांसे भी कोई खरब नहीं मिली। बाबू इस समय अज्ञात वास कर रहे हैं ।

——:o:——

तीसरा परिच्छेद

माधवीनाथने कन्याकी दुर्दशा देखकर स्थिर प्रतिज्ञाकी थी,—"इसकाबदला लेंगे । रोहिणीऔर गोविन्दलाल इस अनिष्टकी जड़ हैं । अतेव पहले इसकी खबर लेनी ही होगी पामर पामरी है कहां ? अन्यथा दुष्टोंका दण्ड कैसे होगा ? भ्रमर भी मरेगी ।"

वह सब एकदम छिपे हुए हैं । जिन सूत्रोंसे उनका पता लग सकता है वह सब अव्यवस्थित है, पद चिन्ह तक मिटा दिये गये हैं लेकिन माधवीनाथने कहा,—"यदि मैं उनका पता न लगा सकूं, तो व्यर्थ है मेरे पौरुषका घमण्ड ।"

इस प्रकार स्थिर-संकल्प होकर माधवीनाथ अकेले राय-निवाससे बाहर हुए । हरिद्रार ग्राममें एक पोस्ट आफिस है । महीना पाने वाला एक डिपुटी पोस्ट मास्टर वहां विराजमान हैं । आमकी लकड़ीके बने एक टेबुलपर कितनी ही चिट्ठियां, चिट्ठियांकी फाइल,

लिफाफा, मुहर आदि लेकर पोस्ट मास्टर पोस्ट बाबू डाक-पियनके सामने अपनी वाहवाही दिखाते हुए बैठे हैं। डिपुटी पोस्ट मास्टर बाबू पाते हैं १५ रुपये; और पियन बेचारा कुल ७) रुपये। अतः पियन सोचता है, कि १५) आने और ७ आनेमें जितना फर्क है, वही फर्क उसमें और बाबूमें है। इससे अधिक नहीं। लेकिन बाबू अपने मनमें सोचते हैं कि मैं पोस्ट बाबू हूं और वह एक पियन, अतः मुझमें उसमें जमीन आसमानका अन्तर है। मैं उसका हर्त्ता, कर्त्ता, विधाता पुरुष हूं। इसलिये इस बातको सप्रमाण करनेकी गरजसे पोस्ट बाबू बेचारे गरीबपर गरजते-तरजते रहते हैं और वह भी अपने सात आनेके वजनके मुताबिक जवाब दिया करता है। आपाततः बाबू चिट्ठीका वजन कर रहे थे और साथ ही साथ प्यादेकी अस्सी आनेके वजनके मुताबिक भर्त्सना कर रहे थे, ऐसी ही समय प्रशान्त मूर्त्ति सहास्य मुख माधवीनाथने वहां आकर दर्शन दिया। भले आदमीको देखकर पोस्ट बाबू पियनकी भर्त्सना त्याग-कर मक्काकी तरह उनका मुंह देखने लगे। भले आदमियोंका समादर करना चाहिये—यह मनमें होनेपर भी बेचारा अपनी शिक्षाके अनुसार कुछ कर न सका।

माधवीनाथने देखा, सामने एक बन्दर है। हंसते हुए उन्होंने कहा,—"ब्राह्मण ?"

पोस्ट मास्टरने कहा,—"हाँ, तु-तुम-आ-आप ?

माधवीनाथने मुस्कुराते हुए हाथ माथे तक ले जाकर और मस्तक झुकाकर कहा,—"प्रातः प्रणाम।"

इसपर पोस्ट मास्टर बाबूने कहा,—"बठिये।"

माधवीनाथ कुछ विपद्में पड़े। पोस्ट बाबूने तो कह दिया—बैठिये बैठें कहां—बाबू स्वयं एक तीन पैर वाली त्रिपायीपर बैठे हैं और वहां उनके बैठनेके लिये कोई चीज नहीं। तब उन बाबूके सात आना वाले प्यादा हरिदासने बुद्धिमानी दिखाकर एक टूटी तिपाई परसे वही आदि हटाकर बैठनेके लिये दिया। माधवीनाथने बैठकर और उसे भर दृष्टि देखकर कहा,—

"क्यों भाई! कैसे हो? तुम्हें तो बहुत दिनोंसे नहीं देखा?"

पियन—जी, मैं यहां चिट्ठी बांटा करता हूं।

माधवी—यह तो जानता हूं। भला एक चिलम तमाखू चढ़ाओ तो सही।

माधवीनाथ दूसरे गांवके आदमी हैं, उन्होंने कभी हरिदास बैरागी पियनको देखा नहीं था और बैरागी बाबाजीने भी कभी बाबूको देखा न था। बाबाजीने मनमें सोचा कि चेहरे लिवाससे तो पक्के बाबू ही जान पड़ते हैं—हो सकता है, जानेके समय चार आने बख्शीसके मिल जायें। यही सोचकर हरिदास हुक्केकी खोजमें दौड़ा।

माधवीनाथ तमाखू बिलकुल नहीं पीते। केवल हरिदास बाबाजी को वहांसे विदा करनेके लिये ही उन्होंने फर्माइश की थी।

पियनके स्थानान्तरित हो जानेपर माधवीनाथने पोस्ट मास्टर बाबूसे कहा,—"आपके पास एक बातकी जांच करनेके लिये आया हूं।"

पोस्ट मास्टर बाबू मन-ही-मन हंसे। वह बंगालके ही रहने वाले थे—विक्रमपुरके। और बातोंमें चाहे जितने बेवकूफ हों, अपने हितकी बात समझनेमें बड़े कुशाग्र बुद्धि हैं। समझ गये कि बाबू किसी बातकी खोजमें आये हैं। बोले, "क्या बात, महाशय ?"

माधवी—ब्रह्मानन्दको आप पहचानते हैं ?

पोस्ट—नहीं पहचानता—हां कुछ—नहीं पहचानता।

माधवीनाथ समझ गये कि अवतार अपनी निजमूर्त्ति धारण करना चाहता है। बोले—"आपके डाकखानेमें ब्रह्मानन्द घोषके नामकी कोई चिट्ठी आया करती है ?"

पोस्ट—आपसे ब्रह्मानन्द घोषकी मुलाकात नहीं है ?

माधवी—हो या न हो। मैं आपसे पूछने आया हूं।

इसपर पोस्ट मास्टर बाबूको अपने उच्चपद और डिपुटीगिरी की शानकी याद आ गयी; अतः जरा नाक-भौंह सिकोड़कर बनावटी रुष्टभावसे बोले,—"हम लोगोंको डाकघरकी खबर बताना मना है।"यह कहकर पोस्ट मास्टर बाबू चुपचाप चिट्ठी तौलने लगे।"

माधवीनाथ मन-ही-मन हंसने लगे। प्रकट रूपमें बोले,—"ए बाबू ! मैं जानता हूं तुम लोग ऐसी ही बातें किया करते हो—इसी लिये साथमें कुछ लेकर चला हूं और देकर जाऊंगा। अब मैं जो-जो पूछता हूं, ठीक-ठीक बताओ तो सही !"

इसपर पोस्ट बाबू प्रसन्न बदन हो खीसों निकालकर बोले,—"क्या, कहिये ?"

माधवी—यही कि ब्रह्मानन्दके नामकी कोई चिट्ठी डाकखानेमें आया करती है ?

पोस्ट—हां, आती है।

माधवी—कितने दिनोंके अन्तरपर ?

पोस्ट—जो बात बतला दी है, उसका अभी तक रुपया नहीं मिला पहले उसका रुपया निकालिये, तब दूसरी नयी बात पूछिये।

माधवीनाथकी इच्छा थी कि पोस्ट मास्टरको कुछ देंगे। लेकिन उसके चरित्रसे वह बहुत नाराज हो गये। बोले—"बाबू ! तुम शायद परदेशी जान पड़ते हो—मुझे पहचानते हो ?"

पोस्ट मास्टरने माथा हिलाते हुए कहा,—"नहीं; लेकिन आप चाहे कोई भी क्यों न हों—हम लोग क्या पोस्ट आफिसकी खबर इससे-उससे कहते फिरते हैं ? कौन हो तुम ?"

माधवी—मेरा नाम माधवीनाथ सरकार है—घर राजग्राम। मेरे हाथमें कितने लठैत रहते हैं, जानते हो ?

पोस्टबाबू भयभीत हुए। माधवीनाथ बाबू का नाम और दुर्दण्ड प्रताप सुन चुके हैं। पोस्टबाबू सन्न रह गये।

माधवीनाथ कहने लगे,—"मैं तुमसे जो पूछूं, सच-सच बताओ। खबरदार कुछ छिपाना नहीं। यदि छिपाओगे, तो एक पैसा भी न दूंगा और यदि बिल्कुल बताना न चाहोगे, तो याद रखो, तुम्हारे घरमें आग लगवा दूंगा-,—"तुम्हारा डाकखाना लुटवा दूंगा; इधर अदालतमें यह प्रमाणित कर दूंगा, कि तुमने स्वयं अपने आदमियोंसे डाकखाना लुटवा लिया है। बोलो, अब बताओगे ?"

पोस्टबाबूको तो जूड़ी बुखार आगया—थर-थर-थर कांपने लगे। बोले,—"आप नाराज क्यों होते हैं ? मैं तो आपको पहचानता न था; ऐसा गैर ही समझ कर मैंने वैसी बात कही थी। जब आप आये हैं, तो जो कुछ आप पूछेंगे, मैं साफ-साफ बताऊंगा।"

मा०—कितने दिनोंके अन्तरसे ब्रह्मानन्दकी चिट्ठियां आया करती हैं ?

पो०—प्रायः एक-एक महीने पर—फिर भी; कोई निश्चित नहीं ।

मा०—तो क्या रजिस्ट्रीसे आती है ?

पो०—हां, प्रायः अनेक चिट्ठियां रजिस्ट्रीसे ही आती हैं।

मा०—किस आफिससे रजिस्टर्ड होकर आती हैं ?

पो०—यह तो याद नहीं है।

माधवी०—तुम्हारे आफिसमें एक रसीद क्या नहीं रहती ?

पोस्टमास्टरने रसीद खोजकर बाहर की। एकको पढ़कर बताया,—"प्रसादपुर।"

"प्रसाद पुर किस जिलेमें है ? तुम्हारी लिस्ट देखें।"

पोस्टमास्टरने कांपते-कांपते छपी हुई लिस्ट देखकर बताया, "यशोहर।"

मा०—तब देखो, और कहां-कहांसे उसके नाम रजिस्ट्री चिट्ठी आती है ? सारी रसीदें देखो।

पोस्टबाबूने देखा। आजकल जितने पत्र आते हैं, सब प्रसाद-

पुरसे ही आते हैं। माधवीनाथने पोस्टमास्टर बाबूके हाथमें दस रुपयेका एक नोट पकड़ा दिया, और विदा हुए। उस समय तक भी हरिदासबाबाका हुक्का तैयार हुआ न था। माधवीनाथ हरिदास के लिये भी एक रुपया रख गये। शायद यह कहना न होगा कि पोस्टबाबूने उसे भी आत्मसात किया।

——:o:——

चौथा परिच्छेद

माधवीनाथ हंसते हुए लौट आये। माधवीनाथने गोविन्दलाल और रोहिणीके अधःपतन की कहानी अन्य लोगोंके मुंहसे भी सुनी। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि गोविन्दलाल और रोहिणी दोनों ही एक साथ गुप्त रूपसे रह रहे हैं। ब्रह्मानन्दकी अवस्थासे वह विशेष अवगत थे—जानते थे कि रोहिणीके अतिरिक्त उसके और कोई नहीं है। अतएव जब उन्हें मालूम हुआ कि ब्रह्मानन्दके नाम हर महीना-महीना रजिस्ट्री आ रही है, तो वे समझ गये कि या तो रोहिणी या गोविन्दलाल उसे महीने-महीने खर्च भेजते हैं, प्रसादपुरसे चिट्ठी आती है, अतएव दोनों ही प्रसादपुरमें अथवा उसके समीप किसी जगह अवश्य रहते होंगे। लेकिन निश्चयको दृढ़ निश्चयमें परिणत करनेके लिये कन्यालयमें लौट कर थानेमें एक आदमी भेजा। सब-इन्सपेक्टरको लिख भेजा— एक कांस्टेबुलको भेज दीजिये। आशा है, कुछ चोरीका माल पकड़ा दूंगा।

सब-इन्सपेक्टर माधवीनाथको खूब पहचानते थे—भय भी करते थे—पत्र पानेके साथ उन्होंने निद्रासिंह नामक एक कांस्टेबल को भेज दिया। माधवीनाथने निन्द्रासिंहके हाथमें दो रुपये रख कर बोले,—"देखो भाई ! कुछ इधर-उधर न करना जो कहता हूं, वही करो। इस सामनेके पेड़के पास जाकर छिप रहो; लेकिन पेड़के नीचे इस तरह खड़े रहो कि यहांसे दिखाई दे। और कुछ न करना होगा।" निद्रासिंह राजी होकर विदा हुआ। इसके बाद माधवीनाथने ब्रह्मानन्दको बुला भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पासमें बैठ गये। उस समय वहां और कोई न था।

परस्पर आगत-स्वागतके बाद माधवीनाथने कहा,—"आप मेरे समधी साहबके बड़े निकटके जन हैं। इस समय उनका कोई नहीं है—मेरा दामाद भी विदेशमें है। आपपर कोई आपद्-विपद आनेपर मुझे ही देखना—सम्भालना पड़ेगा—इसी लिये आपको बुलवाया है।"

ब्रह्मानन्दका मुंह तो सूख गया। बोले,—"कैसी विपद्, महाशय !" माधवीनाथने कुछ और गम्भीर होकर कहा,—"आपपर कुछ विपद् आ गयी है।"

ब्र०—विपद् ! कैसी विपद् ?

मा०—केवल, विपद् ही नहीं, विपद् समूह। पुलिसने किसी प्रकार मालूम कर लिया है कि निश्चय ही आपके पास एक नोट ऐसा है, जो चोरीका है।

ब्रह्मानन्द तो आकाशसे गिरे।—"यह क्या? मेरे पास चोरी का नोट?"

माधवी—तुम्हारी जानकारीमें नहीं हो सकता। शायद किसी दूसरेने तुम्हें दिया हो और तुमने उसे अपने पास रखा हो।

ब्र०—यह महाशय क्या कहते हैं? मुझे कौन नोट देगा?

माधवीनाथने तब कुछ धीमी आवाज़से कहा,—"मैं सब जान गया हूं—पुलिस भी जान गयी है। सच पूछिये तो पुलिससे ही मुझे यह सारी बातें मालूम हुई हैं। चोरीका नोट प्रसादपुरसे आया है। वह देखो, एक पुलिस कांस्टेबल तुम्हारे लिये आकर खड़ा है। मैंने उसकी कुछ पूजा कर दी है, इसलिये वह ठहर गया है।"

यह कहते हुए माधवीनाथने रूलधारी गलगुच्छेदार दाढ़ीसे सुशोभित भयानक सर्प सदृश उस कांस्टेबलकी कान्तमूर्त्तिके दर्शन कराये।

ब्रह्मानन्द बेंतकी तरह कांप उठे। माधवीनाथके पैर पकड़कर रोकर बोले,—"आप मेरी रक्षा कीजिये।"

मा०—डरो मत। बताओ तो इस बार प्रसादपुरसे किस-किस नम्बरके नोट आये हैं? पुलिस वालोंने मेरे पास नोटके नम्बर लिखा दिये हैं। यदि वह नम्बर तुम्हारे पासके नोटोंका न हो, तो डर काहेका है? नम्बर बदलनेमें कितनी देर लगती है? इस बारका प्रसादपुरका पत्र ले तो आओ, देखें। नोटका नम्बर मिलावें।

लेकिन ब्रह्मानन्द जांय कैसे ? डर लगता है—पेड़के नीचे कांस्टेबल खड़ा है।

माधवीनाथने कहा,—"कोई डर नहीं। मैं अपना आदमी साथमें देता हूं। "माधवीनाथके आदेशानुसार एक दरबान ब्रह्मानन्दके साथ गया। ब्रह्मानन्द रोहिणीका पत्र ले आये। उस पत्रसे जो-जो बातें माधवीनाथ जानना चाहते थे, सब उन्हें मालूम हो गयीं।

माधवीनाथने पत्र पढ़कर ब्रह्मानन्दको लौटाकर कहा,—"इस नम्बरके नोट नहीं हैं। कोई डर नहीं है—तुम घर जाओ। मैं कांस्टेबलको विदा कर देता हूं।"

ब्रह्मानन्दके मरे हुए शरीरमें प्राण आया। एक सांसमें वह वहांसे दौड़कर भागे।

माधवीनाथ चिकित्सा करानेके लिये कन्याको अपने घर ले गये। उसकी चिकित्साके लिये उपयुक्त चिकित्सक नियुक्त कर स्वयं वह कलकत्तेके लिये चल पड़े। भ्रमरने बहुत आपत्ति की लेकिन उन्होंने एक न सुना। 'शीघ्र ही लौटूंगा।" कहकर कन्याको प्रबोध दे गये।

कलकत्तेमें निशाकरदास नामके एक बड़े ही अन्तरंग मित्र माधवीनाथके थे। निशाकर माधवीनाथकी अपेक्षा दस-बारह वर्ष कम उम्रके थे। निशाकर कुछ काम नहीं करते—पैतृक सम्पत्ति है—केवल कुछ-कुछ गीतवाद्यमें लगे रहते हैं। माधवीनाथने आकर उनसे

मुलाकात की। अन्यान्य बातोंके बाद निशाकरसे उन्होंने पूछा,—"क्यों भाई! थोड़ा घूमने-घामने न चलोगे?"

निशा०—कहां?

मा०—यशोहर।

निशा०—वहां क्या है?

मा०—नीलकी कोठी खरीदना है।

निशा०—चलो।

तब आवश्यक वस्तुओंका संग्रह कर दोनों ही मित्र दूसरे ही दिन यशोहरके लिये चल पड़े। वहांसे वह लोग प्रसादपुर जायेंगे।

——:o:——

पांचवां परिच्छेद

देखो, धीरे-धीरे शीर्ण शरीरा चित्रा नदी बह रही है। किनारे पर अश्वत्थ; कदम्ब, आम और खजूर आदिके पेड़ोंसे शोभित उपवनमें कोयल कूक रही है। प्रसादपुर नामका एक छोटा बाज़ार यहांसे कोई एक कोस दूर है।

अबसे बहुत पहलेकी बात है। यहां मनुष्य समागम न देखकर पापाचारके ख्यालसे ही एक गोरे नीलकर साहबने यहां नील कोठी बनवाई थी। इस समय नीलकर और उसके ऐश्वर्यका ध्वंस हो गया है। उसके अमीन, नायाब, तकाजगीर, गुमास्ते अपनी-अपनी जगह पर अपने कर्मका फल भोग कर रहे हैं। एक बङ्गालीने उस जन शून्यस्थित कोठी को खरीद कर उसे फिर सुसज्जित किया

है। फूल, पत्थरकी आदमकद पुतलियां, कालीन, गलीचे, चित्र आईने आदिसे उसे चित्रित कर दिया है। उस मकानके दूसरे मंजीलके एक बड़े कमरेमें हम प्रवेश करते हैं। कमरेमें कितने ही स्मरणीय चित्र हैं-लेकिन उनमें कितने कुरुचिभाव पूर्ण हैं-उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्मल सुकोमल फर्श पर एक गलगुच्छेदार मुसलमान एक तानपूरा लिये हुए उसके कानोंको ऐंठ कर तारका स्वर मिला रहा है। पासमें ही बैठी एक युवती तबलेको गुम-गुम अवाजसे गुमका रही है। इसके साथ ही उस सुन्दरीके हाथके स्वर्ण अलंकार झनकार मार रहे हैं। बगलके एक बड़े आईनेमें उन दोनों की तद्रुप मूर्त्ती प्रतिफलित हो रही थी। पासके ही एक कमरेमें बैठा हुआ एक बंगाली युवक एक उपन्यासमें पढ़ रहा था और बीच-बीचमें खुले दरवाजेसे उन दोनोंके कार्य-कलाप भी देखता जाता था।

तानपूरेकी खूंटी ऐंठता हुआ वह दाढ़ीवाला तारों पर झनकार करता जाता था। जब उस्तादजीकी विवेचनामें तारोंका मिऊ-मिऊं और तबलेका खन-खन आवाज एक हो गया, तो उस मूंछ दाढ़ीके अन्धकारमें कितने ही दूध जैसे दांत खिल उठे। इसके बाद ही उस्तदाजीने अपना वृषभ तुल्यरव उत्थित किया। आवाज निकालनेके बाद उस्तादजीके दांत इस तरह चित्र-विचित्र ढङ्गसे दिखाई देने लगे, जैसे बन्दर विविध ढङ्गसे अपने दन्त प्रदर्शन करते हैं। इसी समय उस युवतीका मधुर कण्ठ भी शुरू हुआ और दोनों ही स्वर मिलकर मानो सुनहली रुपहली धाराके रूपमें परिणत हो गये।

इच्छा तो होती है कि यहीं यवनिका पात कर दिया जाय। जो अपत्तिक है, अदर्शनीय है, इसे हमें दिखानेकी इच्छा नहीं—जिसके बिना कहे बन नहीं सकता वही कहूंगा। फिर भी, वह अशोक, बकुल, कुटज, कुरबक-कुंजके बीच भ्रमरगुंजन, कोकिल-कूजन, वह क्षुद्र नदी, जूही मल्लिका, मालती और पुष्पोंका सौरभ, तरंगों पर नाचनेवाले राजहंसोंका कलनाद, उस कमरेमें नीले शीशेसे आने वाली रोशनीकी अपूर्व माधुरी, उस रजत स्फटिक निर्मित गुल-दानमें पुष्पोंकी शोभा गृहकी शोभा बढ़ानेवाले सुविन्यस्त द्रव्योंका विचित्र उज्ज्वल वर्ण और उस गायनाचार्यके विशुद्ध स्वरसप्तककी सृष्टि आदि का क्षणिक उल्लेख कर दिया गया है। कारण,जो युवक अब मनोनिवेश पूर्वक युवतीके चंचल कटाक्षोंका-निरीक्षण कर रहा है, उसके हृदयमें इस काटाक्षके माधुर्यसे ही इन वस्तुओंकी शोभा बढ़ रही है।

यही युवक गोविन्दलाल है और यही युवती रोहिणी। इस मकानको गोविन्दलालने ही खरीदा है। यहीं यह लोग स्थायी रूप से रहते हैं।

एकाएक रोहिणीका तबला बेसुरा हो गया। उस्तादजीके तान-पूरेका तार टूट गया। उनका गला भर्रा गया। गाना बन्द हुआ गोविन्दलालके हाथका उपन्यास गिर पड़ा। इसी समय उस प्रमोद-गृहके दरवाजेपर एक अपरिचित युवकने प्रवेश किया। हम लोग उस युवकको पहचानते हैं—उसका नाम निशाकरदास है।

——:o:——

छठा परिच्छेद

दो मंजिले मकानके ऊपरी हिस्सेमें एक कमरेमें रोहिणी रहती है—यहां वह हाफ पर्दानसीन है। नीचेकी मंजिलमें नौकर-चाकर रहते हैं। इस एकान्त स्थानमें गोविन्दलालसे मिलनेके लिये कभी कोई नहीं आता। अतएव वहां मर्दाना, जनानाकी कोई जरूरत न थी। यदि इस अवसरपर कोई इन भले आदमीके बदले कोई दूकानदार या ऐसा ही अन्य कोई मिलने आता तो गोविन्दलाल उससे मुलाकात करनेके लिये नीचे आ जाते। अतएव बाबूके बैठने के लिये नीचे भी एक कमरा निर्दिष्ट था।

नीचेकी मंजिलके दरवाजेपर निशाकरदासने आवाज लगायी—"कौन है यहाँ?"

गोविन्दलालके रूपा-सोना नामके दो नौकर हैं। आवाज लगाते ही दोनों दरवाजेपर आकर निशाकरदासको देखकर विस्मित हुए। निशाकरदास देखते ही विशेष भले आदमी दिखाई दिये—निशाकर भी जरा खूब बन-ठनकर गये थे। इस तरहका कोई भी आदमी उस दरवाजेपर आया न था। अतः उन्हें देखकर दोनों ही नौकर एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे।

सोनाने पूछा,—"आप किसे खोजते हैं?"

निशा०—तुम्हीं लोगोंको। बाबूको खबर करो कि एक भले आदमी मिलने आये हैं।

सोना०—क्या नाम बताऊंगा?

निशा०—नामकी क्या जरूरत है, वह दो एक भले आदमी हैं।

नौकर तो जानते थे कि बाबू किसी भले आदमीसे मुलाकात नहीं करते—अतः मुलाकातकी सम्भावना ही न थी। नौकरोंने यही सोचकर खबर देनेमें उत्सुकता न दिखायी। सोना जरा इधर-उधर करने लगा। रूपा बोला,—"आप व्यर्थ आये हैं—बाबू किसीसे मुलाकात नहीं करते।"

निशा०—तब तुम लोग रहने दो, मैं बिना खबरके ही ऊपर जाता हूं।

नौकर बड़ी विपद्में पड़े। बोले,—"नहीं, महाशय! हम लोगों की नौकरी चली जायगी।"

इसपर निशाकरने एक रुपया निकालकर कहा,—"जो खबर करेगा, यह रुपया उसीका होगा।"

सोना विचार करने लगा—इतनेमें ही रूपा चीलकी तरह झपट्टा मारकर हाथसे रुपया लेकर ऊपर खबर करने चला गया।

मकानके चारों ओर जो बगीचा है, वह बहुत ही मनोरम है। निशाकरने सोनासे कहा—"मैं इसी बागमें टहलता हूं—आपत्ति न करना—जब वह आये, तो यहांसे मुझे बुला लेना।" यह कहकर निशाकरने सोनाके हाथमें एक रुपया और दिया।

उधर रूपा जिस समय बाबूके पास पहुंचा, वे किसी काममें—बड़े अनस्वतवरमें थे—अतः वह निशाकरकी कोई खबर उन्हें दे न सका। इधर बगीचा घूमते हुए निशाकरने एक बार ऊपर निगाह

कर देखा कि खिड़कीसे एक परमा सुन्दरी युवती उन्हें खड़ी निहार रही है।

रोहिणी निशाकरको देखकर सोच रही थी,—"यह कौन है? देखनेसे तो जान पड़ता है कि यह इस देशका आदमी नहीं है। चेहरेसे तो कोई धनी आदमी जान पड़ता है। देखनेमें भी सुन्दर है—गोविन्दलालकी अपेक्षा? नहीं, ऐसा नहीं है। गोविन्दलालका रंग खुलता है--

लेकिन इसका चेहरा और इसकी आंखें बड़ी सुन्दर हैं। विशेषतः आंखें—आह मरी! क्या आंखें हैं? यह कहांसे आया? हरिद्राग्राम का तो कोई नहीं है? वहांके तो हरेक आदमीको पहचानती हूं। क्या उसके साथ दो बातें हो नहीं सकतीं? हानि क्या है—मैं गोविन्दलालके प्रति कभी विश्वासघातिनी तो हो नहीं सकती?"

रोहिणी यह सोच रही थी कि निशाकरने ऊपर देखा और आंखें चार हो गयीं। आंखों-आंखोंमें कोई बात हुई या नहीं, मैं नहीं कह सकता—जान सकनेपर भी कहनेकी इच्छा नहीं है—लेकिन यह जानते हैं कि इस तरह बातें हुआ करती हैं।

ऐसे समय रूपाने बाबूको खाली देखकर आगन्तुक बाबूका सन्देश दिया। बोला—एक भले आदमी मुलाकातके लिये आये हैं। बाबूने पूछा,—"कहांसे आये हैं?"

रूपा०—यह नहीं मालूम।

बाबू०—तो बिना पूछे खबर क्यों देने आया?

रूपाने देखा कि बेवकूफ बनना पड़ता है, तो तुरत उपस्थित बुद्धिकी सहायतासे बोला,—"यह पूछा था, तो उन्होंने कहा, बाबूसे बतायेंगे।"

बाबूने कहा—तो जाकर कह दे कि मुलकात न होगी।

* * * *

इधर विलम्ब देखकर निशाकर समझ गये कि शायद गोविन्दलालने मिलनेसे इनकार कर दिया है। लेकिन दुराचारीके साथ भलमनसाहत क्यों की जाय ? मैं क्यों न स्वयं ऊपर चला जाऊं ?

यह विचार कर नौकरके लौटनेके पहले ही, उसकी प्रतीक्षा किये बिना निशाकरने मकानमें प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि सोना, रूपा कोई भी नीचे नहीं है। इस तरह वह निरुद्वेग हो सीढ़ी चढ़कर, जिस जगह गोविन्दलाल, रोहिणी और दानिशा खां थे, वहां पहुंच गये। रूपाने उन्हें दिखाकर कहा,—"यह बाबू मुलकात करना चाहते थे।

गोविन्दलाल बड़े नाराज हुए। लेकिन उन्होंने देखा कि भले आदमी हैं। उन्होंने पूछा,—

"आपका परिचय ?"

नि०—मेरा नाम रासबिहारी दे है।

गो०—निवास ?

नि०—बराहनगर।

यह कहते हुए निशाकर दास जमकर बैठ गये। क्योंकि वह समझ गये थे कि बैठनेके लिये कभी कह नहीं सकते।

गो०—आप किससे मिलना चाहते हैं ?

नि०—आपसे ।

गो०—यदि बलपूर्वक मेरे घरमें घुस न आते, तो नौकर से आपको खबर मिलती कि मुझे फुरसत नहीं है।

नि०—लेकिन अवकाश तो खूब देख रहा हूं। डर या धमकी से यदि उठ जाना होता, तो बिना बुलाये आपके पास कभी न आता। जब मैं आ गया हूं तो मेरी कुछ बातें सुन लेनेसे ही मैं सन्तुष्ट होकर चला जाऊँगा।

गो०—मेरी तो यही इच्छा है कि न सुनूं। फिर भी, यदि दो बातोंमें समाप्त कर सकें, तो कहकर चले जायें।

नि०—दो बातोंमें ही कहूंगा। आपकी स्त्री भ्रमरदासी अपनी सम्पत्तिका दानपत्र किया चाहती हैं।

इसी समय दानिश खांने अपने तानपूराका एक टूटा तार चढ़ाया। उसने एक हाथसे तार चढ़ाते हुए दूसरे हाथकी उंगलीपर गिनकर कहा,—"एक बात हुई।"

नि०—"मैं वह दान-पत्र लूंगा।" दानिशने उंगलीपर गिनकर कहा,—"दो बात हुई।"

नि०—इसी लिये मैं आपके हरिद्राग्रामके मकानपर भी गया था।

दानिश खांने कहा,—"दो बात छोड़कर तीन बात हुई।"

नि०—उस्तादजी, सूअर ! चुप रहो।

उस्तादजीने लाल आंखेंकर गोविन्दलालसे कहा,—"बाबू साहब! इस बदतमीज आदमीको विदा कीजिये।"

लेकिन बाबू साहब उस समय अन्यमनस्क हो रहे थे, इसलिये कुछ न बोले।

निशाकरने फिर कहना शुरू किया,—"आपकी पत्नी मुझे दानं पत्र करनेके लिये तैयार है, लेकिन आपकी अनुमतिकी अपेक्षा है, वह आपका पता भी नहीं जानतीं, पत्रादि भी लिखना नहीं चाहतीं। अतएव आपकी सम्मति जाननेका भार भी मुझपर ही पड़ा। मैंने बड़े मुश्किलसे आपका पता लगाया है और अब आपकी अनुमति चाहता हूं।

गोविन्दलालने कोई उत्तर न दिया—बहुत अन्यमनस्क हो गये। बहुत दिनोंके बाद भ्रमरका हाल मिला है। —उनकी वही भ्रमर! प्रायः दो वर्ष हो गये।

निशाकर भी बहुत कुछ समझ गये। उन्होंने फिर कहा,— "यदि आपकी सहमति हो, तो एक लाइन लिख दीजिये कि आपको कोई आपत्ति नहीं है। इतना होनेसे ही मैं चला जाऊंगा।"

लेकिन गोविन्दलालने कोई उत्तर न दिया। निशाकर समझ गये कि फिर कहना पड़ा। उन्होंने फिर सारी बातें समझाके कहीं। एक बार चित्त संयतकर गोविन्दलालने सारी बातें सुनीं। पाठक तो समझ गये होंगे कि निशाकरकी सारी बातें झूठी हैं। लेकिन गोविन्दलालने ऐसा न समझा। पहलेका उग्र भाव त्याग करके बोले,—

"मेरी अनुमति अनावश्यक है। सम्पत्ति मेरी स्त्रीकी है; मेरी नहीं। शायद यह आप जानते होंगे। उनको जिसे इच्छा हो दान करें। मेरा अपना कोई निषेध नहीं है। मैं कुछ न लिखूंगा। शायद अब आप मुझे छुट्टी देंगे।"

काम समाप्त हुआ देखकर निशाकरको विदा होना ही पड़ा। वह वहाँसे उठकर नीचे चले आये। निशाकरके चले जानेपर गोविन्द-लालने दानिश खांसे कहा,—"कुछ गाओ।"

दानिश खांने प्रभु की आज्ञासे फिर तानपूरा उठाया और स्वर मिलाकर पूछा—"क्या गाऊं ?"

"जो इच्छा हो!" कहकर गोविन्दलालने तबला उठाया। गोविन्दलाल पहले भी कुछ-कुछ बजाना जानते थे, इस समय तो बहुत अच्छा बजाना सीख गये हैं। लेकिन आज वह दानिशखांका साथ दे न सके। तालसे बेताल होने लगे। दानिशखांने विरक्त होकर तानपूरा रख कर कहा,-आज मैं बहुत थक गया हूं।" इसके बाद गोविन्दलालने एक सितार लेकर बजाना चाहा, लेकिन उस समय सारी गतें माथेसे विलुप्त हो गयी थीं। सितार छोड़कर उन्होंने फिर उपन्यास पढ़ना शुरू किया। लेकिन वह जो पढ़ते थे, उसका अर्थ ही न समझते थे। इसपर किताब भी फेंककर गोविन्दलालने शयन कक्षमें प्रवेश किया। रोहिणीको तो उन्होंने वहां नहीं पाया, लेकिन सोना नौकर वहां था, दरवाजे परसे गोविन्दलालने सोनासे कहा,—"मैं सोना चाहता हूं, ख्याल रखो, जब तक मैं स्वयं सोकर न उठूँ तब तक मुझे कोई जगाने न पाये।"

यह कहकर गोविन्दलालने सोनेवाले कमरेका दरवाजा बन्द कर लिया। उस समय प्रायः सन्ध्या हो चुकी थी।

दरवाजा बन्द करके भी गोविन्दलाल सो न सके। पलंग पर बैठकर दोनों हाथोंसे मुंह ढंक कर रोने लगे।

नहीं कह सकते कि वह क्यों रो रहे थे। भ्रमरके लिये रो रहे थे; या अपने लिये रो रहे थे यह कौन जाने? शायद दोनोंके लिये।

हम तो, गोविन्दलालको रोनेके अतिरिक्त और कोई उपाय है, यह नहीं देखते। भ्रमरके लिये रोनेकी गुंजाइश है। लेकिन भ्रमरके पास लौट जानेका कोई रास्ता नहीं है। हरिद्राग्राममें फिर मुंह दिखानेकी बात नहीं है। हरिद्राग्रामकी राहमें कांटे बिछे हुए हैं। रोनेके सिवा और उपाय ही क्या है?

—:o:—

सातवां परिच्छेद

जिस समय निशाकरको आकर बड़े हालमें बैठना पड़ा, उस समय वाध्य होकर रोहिणीको बगलवाले कमरेमें चला जाना पड़ा। लेकिन केवल आंखोंकी ओट होनेके लिये—श्रवण शक्तिसे दूर होनेके लिये नहीं। उसने, उन लोगोंके बीच जो बातें हुईं सब कान लगाकर सुना। इतना ही नहीं; बल्कि परदा हटाकर निशाकरको झांककर देखने भी लगी। निशाकरने भी देखा कि परदेकी आड़से दो परवलकी फांक जैसी आंखें झांक रही हैं।

रोहिणीने सुना कि निशाकर या रासविहारी हरिद्राग्रामसे आ रहे हैं। रूपा नौकर भी रोहिणीकी तरह खड़ा होकर सारी बातें

सुनता रहा। निशाकरके उठकर जाते ही रोहिणीने रूपाको ऊंगली के इशारेसे अपने पास बुलाया। रूपाके पहुंचनेपर उससे कानमें कहा,—"जो कहूं, वह कर सकेगा? बाबूसे सारी बातें छिपानी होंगी। जो कुछ करेगा, उसे यदि बाबू जान न पायेंगे तो तुझे पांच रुपये इनाम दूंगी।"

रूपाने सोचा, नहीं मालूम आज किसका मुंह देखकर उठा हूं। आज देखता हूं कि रुपये बरस पड़े हैं। गरीब हैं, दो पैसे मिल जायें तो इससे बढ़कर क्या है? प्रकट रूपमें बोला,—"जो कहेंगी, मैं वैसा ही करूंगा। कहिये, क्या आज्ञा है?"

रो०—इस बाबूके साथ तू भी बाहर चला जा। वह मेरे पिताके गांवसे आये हैं। वहांका मैं कभी कोई संवाद नहीं पाती और इसके लिये बहुत रोती हूं। जब देशका एक आदमी आ गया है, तो उससे घरका हाल-चाल पूछूंगी। बाबूने तो उसे क्रोध करके भगा दिया है। तू जाकर उन्हें बैठा। ऐसी जगह बैठाइयो, कि बाबू नीचे जाकर भी उसे देखने न पायें। मैं जरा फुरसत पाते ही जाऊंगी। अगर बैठना न चाहें, तो विनय-विनती करना।

रूपाको तो इनामकी गन्ध मिल गयी, वह बहुत अच्छा कहकर चल दिया।

नहीं जानते कि निशाकर किसलिये गोविन्दलालको छलनेके लिये आये हैं; लेकिन नीचे आनेपर वह जिस तरहका आचरण दिखा रहे थे, बुद्धिमान लोग उसे अच्छा न कहेंगे। वह गृहके प्रवेश

द्वारका दरवाजा, सिटकनी, कब्जा आदि देख रहे है। इसी समय रूपा नौकर आ पहुंचा।

रूपाने कहा,—"तम्बाकू पीनेकी इच्छा है, बाबू जी !"

निशा०—बाबूने तो पूछा नहीं, नौकरसे तमाखू लूं क्या ?

रूपा०—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं। जरा पोशीदा बात है—एकान्तमें आइये।

रूपा निशाकरको लेकर अपने निर्जन कमरेमें पहुंचा। निशाकर भी बिना आपत्तिके चले गये। निशाकरको बैठाकर उसने रोहिणीकी सारी बातें उनसे कह दीं।

निशाकरने तो हाथ बढ़ाकर आकाशका चन्द्रमा पाया। अपनी इच्छापूर्त्तिका अति सहज उपाय उन्हें देख पड़ा। बोले—"भाई ! तुम्हारे मालिकने तो मुझे भगा दिया, मैं उनके घरमें छिपकर कैसे रहूं ?"

रूपा०—नहीं, वह कुछ भी जानने न पायेंगे। इस कमरेमें वह कभी नहीं आते।

निशा०—न आयें; लेकिन जब तुम्हारी मांजी यहां आयेंगी, तो बाबू सोचेंगे, देखें कहां गयी। यदि यही सोचकर पीछे-पीछे आयें, या किसी तरह मेरे पास तुम्हारी मांजीको देख पायेंगे, तो बता तो सही मेरी क्या दशा होगी ?

रूपा चुप हो रहा। निशाकर कहने लगे,—"देखो, भाई ! इस घरके भीतर और इस कमरेमें बन्द कर यदि मेरा खूनकर बगीचेमें गाड़ भी दोगे, तो न मेरे मां है, न बाप, कोई क्या तुम्हारा

कर लेगा ? तब तो तुम भी हमें हो लाठी मारनेसे न चुकोगे। इसलिये ऐसे काममें मैं न पड़ूंगा। अपनी मांजीसे समझा कर कह दो कि यह मुझसे न होगा। हां, एक बात और कहना। उनके बूढ़े बाबाने हमसे कई जरूरी बातें कहनेके लिये कहा है। मैं वह सन्देशा तुम्हारी मांजीसे कहनेके लिये बहुत व्याकुल हूं। लेकिन तुम्हारे बाबूने मुझे भगा दिया। मैं कह न सका। अब मैं जाता हूं।"

रूपाने देखा कि हाथसे पांच रुपये जाया चाहते हैं। वह बोला,—"अच्छा अगर यहां न बैठ सकें, तो बाहर कहीं दूसरी जगह बैठ सकते हैं ?"

निशा०—मैं भी यही बात सोच रहा था। आनेके समय तुम्हारी कोठीके पास ही नदीके किनारे एक पक्का घाट है, उसके पास दो बकुलके वृक्ष हैं; मैं देख आया हूं। वह जगह पहचानते हो ?

रूपा—हां, मजेमें पहचानता हूं।

निशा०—मैं जाकर वहीं बैठता हूं। संध्या हुई है—रात हो जानेपर वहां बैठनेसे कोई देख पहचान न सकेगा। यदि तुम्हारी मांजी वहां आ सकें, तो सारी बातें वह मुझसे सुन सकेंगी। यदि ऐसी-वैसी कोई बात देखूंगा भी, तो भागकर जान तो बचा सकूंगा। घरमें बन्द कर कुत्तोंकी मौत मरना मुझे पसन्द नहीं।

आखिर रूपा नौकरने रोहिणीके पास जाकर निशाकरने जैसा कहा था, वह सब सुना दिया। इस समय रोहिणीके मनका भाव क्या है, यह मैं नहीं बता सकता। जब मनुष्य स्वयं अपने मनकी

बात समझ नहीं सकता—तो मैं कैसे बता सकता हूं कि रोहिणी के मनमें क्या बात है—वह क्या सोच रही है। रोहिणी ब्रह्मानन्दको इतना मानती है कि उसका हाल जाननेके लिये वह हिताहित ज्ञान-शून्य हो जायगी, ऐसी बात तो मैं मान नहीं सकता। मैं समझता हूं कि भीतर और कुछ है। कुछ आंखों-आँखोंमें बातें हो गयीं थीं। रोहिणीने देखा कि निशाकर रूपवान है—परवलके फांक जैसी आंखें हैं। रोहिणीने देख लिया था कि मनुष्योंमें निशाकर एक मनुष्य प्रधान है। रोहिणीके मनमें यह विश्वास था कि मैं गोविन्द-लालके प्रति विश्वासघातिनी न हूंगी। लेकिन विश्वासघात एक बात है—और यह दूसरी बात। शायद उस महापापिष्ठाने मनमें यह सोचा था,—"असावधान मृग पाकर कौन ऐसा शिकारी होगा जो उस अवसरसे लाभ न उठायेगा।" उसने सोचा कि कौन ऐसी नारी होगी जो विजित पुरुषको देखकर उसपर विजयी न बनेगी? बाघ गो-हत्या करता है--लेकिन सब गौको तो खाता नहीं। स्त्री-पुरुषको जय करती है--केवल जय-पताका उड़ानेके लिये। अनेक लोग मछली पकड़ते हैं—खानेके लिये नहीं--शिकार-लिप्सा पूरी करनेके लिये। नहीं जानती, उसमें क्या रस है--क्या आनन्द है। रोहिणीने सोचा कि यह आयत लोचन मृग जब प्रसादपुर-काननमें आ गया है, तो क्यों न उसे शरविद्ध करके छोड़ूं? नहीं जानता कि इस पापिनीके पाप-हृदयमें क्या भावना है--लेकिन रोहिणीने स्वीकार कर लिया कि हलका अन्धेरा होते ही वह उनसे उसी जगह मुलाकात करेगी और अपने वृद्ध चाचाका समाचार सुनेगी।

रूपाने आकर यह बात निशाकरसे कह दी। यह सुनकर प्रसन्न बदन हो निशाकर वहांसे उठकर चल दिये।

——:०:——

आठवां परिच्छेद

रूपाके चले जानेपर निशाकरने सोनाको बुलाकर कहा,--"तुम लोग बाबूके यहां कितने दिनोंसे नौकरी करते हो?"

सोना--यही जितने दिनोंसे बाबू यहां आये हैं, उतने ही दिनोंसे नौकर हैं।

निशा०--तो थोड़े ही दिन हुए? क्या पाते हो?

सोना--तीन रुपया महीना, खाना और कपड़ा।

निशा०--इतनी कम तनखाहमें तुम लोगोंके जैसे खानसामोंका कैसे चलता है?

बात सुनकर तो सोना खानसामा जैसे गल गया, बोला,--"क्या करें, यहां दूसरी नौकरी ही कहां मिलती है?"

निशा०--वाह, नौकरीकी क्या कमी है? हमारे देशमें चलनेसे लोग तुम्हें लोक लेंगे। पांच, सात, दस रुपये तो अनायास ही पा सकते हो।

सोना--बड़ी दया होगी, यदि मुझे अपने साथ ले चलें तो।

निशा०--कैसे ले जाऊं, ऐसे मालिककी नौकरी भला छोड़ोगे?

सोना--मालिक तो अच्छे हैं; लेकिन मालकिन पूरी हरामजादी है।

निशा०—इसका प्रमाण तो हाथों-हाथ पा रहा हूं। मेरे साथ चलोगे जरूर न ?

सोना—पक्का समझिये।

निशा०—तो जानेके समय अपने मालिकका उपकार क्यों नहीं कर जाते ? लेकिन बड़ी सावधानीसे करना होगा। बोलो, कर सकोगे ?

सोना—भलाईका काम होगा तो क्यों न करूंगा ?

निशा०—तुम्हारे मालिकके लिये तो जरूर अच्छा है, लेकिन मालकिनके लिये तो अच्छा न होगा।

सोना—जब तो अभी बताइये, देरकी जरूरत नहीं। इसमें मैं बहुत खुश हूंगा।

निशा०—मालकिनने मुझसे कहला दिया है कि रातको अन्धेरेमें छिपे-छिपे वह मुझसे चित्रा नदीके पक्के घाट पर मिलेंगी। मुझे वहां बैठनेके लिये कहा है। समझे ? मैंने भी स्वीकार कर लिया है। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे मालिककी आंखें खोल दूं। तुम धीरेसे यह बात अपने मालिकसे कह सकोगे ?

सोना—अभी यह पाप खोलके रहूंगा।

निशा०—अभी नहीं। अभी मैं घाट पर जाकर बैठता हूं। तुम सावधान रहना, जब देखना कि मालकिन घाटकी तरफ चली गयीं, उसी समय जाकर अपने मालिकसे कह देना। रूपा यह बात जानने न पाये। इसके बाद मेरे पास आ जाना।

"जैसी आज्ञा" कह कर सोनाने निशाकरके पैरकी धूली माथे चढ़ायी। इसके बाद निशाकर मस्त चालसे हाथीकी तरह धीरे-धीरे टहलते हुए चित्रा नदीतटके पक्के घाट पर जा बैठे। अन्धकारमें नक्षत्रछायासे प्रदीप्त चित्राका जल शान्त बह रहा था। चारों तरफ स्यार-कुत्तोंकी आवाज हो रही थी। कहीं दूर पर किसी नाव पर बैठा हुआ मल्लाह राधाके अभिसारके गीत गा रहा था। इसके अतिरिक्त उस सन्नाटे में और कोई शब्द होता न था। निशाकर बैठे हुए उस गीतको सुन रहे हैं और गोविन्दलालके मकानके दूसरे खण्डकी खिड़कीसे निकली हुई रोशनीका दर्शन कर रहे हैं और मन-ही-मन सोच रहे हैं,—"मैं कैसा नृशंस हूं! एक स्त्रीका सर्वनाश करनेके लिये इतने कौशल कर रहा हूं! लेकिन इसमें नृशंसता क्या है? दुष्टका दमन अवश्य ही कर्त्तव्य है। जब मित्रकी कन्याके जीवन रक्षाके लिये इस कार्यको पूरा करनेका जम्मा मित्रके सामने लिया है, तो अवश्य करूंगा। लेकिन इस कार्यमें मेरा मन खुश नहीं है। रोहिणी पापिनी है, उसे पापका दण्ड दूंगा, पाप-प्रवाहको रोकूंगा, इसमें अप्रसन्न होकर क्या करेगी? नहीं कह सकता, शायद सीधी राह पकड़ने पर इतना सोच न होता। शायद टेढ़ी राह पकड़ने पर ही इतना सङ्कोच हो रहा है। और फिर, पाप-पुण्यका दण्ड देनेवाला मैं कौन हूं? मेरे पाप-पुण्यका जो दण्ड—पुरस्कार करनेवाले हैं, वही रोहिणीका भी करेंगे। नहीं जानता, लेकिन शायद उन्होंने मुझे इस कार्यमें नियोजित किया है। कैसे जाने—

"त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन,
यथा नियुक्तोसि तथा करोमि।"

इस तरह चिन्ता करते-करते निशाकरको एक प्रहर रात बीत गयी। इसी समय निशाकरने देखा कि बड़े ही धीरे-धीरे पैरोंसे चलती हुई रोहिणी आकर पासमें खड़ी हो गयी। निश्चयको सुनिश्चित करनेके लिये पूछा,—तुम कौन हो?"

रोहिणीने भी निश्चय को सुनिश्चित करनेके लिये पूछा,—"तुम कौन?"

निशा०—मैं हूं रासबिहारी।

रोहिणी—मैं रोहिणी हूं।

निशा०—इतनी रात क्यों हुई?

रोहिणी—ज़रा बिना देखे-सुने कैसे चली आती?" कौन जाने, कोई वहींसे देख ले। तुम्हें बड़ी तकलीफ हुई।

निशा०—कष्ट हो या न हो मनमें डर अवश्य हो रहा था कि कहीं तुम भूल तो नहीं गयी।

रोहिणी—यदि मैं भूलनेवाली ही होती, तो आज मेरी यह दशा क्यों होती? एकको न भूल सकनेके कारण इस देशमें आई हूं, और आज तुम्हें न भूल सकनेके कारण इस जगह आई हूं।

यह बात हो ही रही थी कि ऐसे समय किसीने पीछेसे आकर रोहिणीका गला पकड़ लिया। रोहिणीने कांप कर पूछा,—"कौन है रे?"

गम्भीर स्वरमें उत्तर मिला,—"तुम्हारा यम।"

रोहिणी पहचान गयी कि गोविन्दलाल हैं। तब आसन्न विपद् समझ कर चारों तरफ अन्धेरा देखते हुए रोहिणीने भीत विकम्पित स्वरमें कहा,—"छोड़ो-छोड़ो! मैं किसी बुरी नीयतसे यहां नहीं आयी हूं। मैं जिस गरजसे आई हूं इस बाबूसे पूछ सकते हो।"

यह कहकर रोहिणीने उधर उंगली उठाई, जिधर निशाकर बैठे थे। लेकिन उसने देखा कि वहां कोई नहीं है। निशाकर गोविन्दलालको देखते ही पलक मारते न मालूम कहां अदृश्य हो गये। रोहिणीने आश्चर्यसे कहा,—"यहां तो कोई नहीं है?"

गोविन्दलालने कहा,—"हां, यहां कोई नहीं है, मेरे साथ घर चलो।"

रोहिणी दुःखी हृदयसे गोविन्दलालके साथ धीरे-धीरे घर लौट गयी।

—:०:—

नवां परिच्छेद

घर लौटकर गोविन्दलालने नौकर आदि सबको मना कर दिया कि ऊपर कोई न आये।

उस्तादजी अपने घर थे।

गोविन्दलालने रोहिणीके साथ अपने शयनकक्षमें पहुंच कर भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया। सामने रोहिणी नदी स्रोत-विकम्पित बेंतके पेड़की तरह खड़ी कांपने लगी। गोविन्दलालने मृदुस्वरमें कहा,—"रोहिणी!"

रोहिणी बोली—"क्या ?"

गो०—तुमसे बहुतेरी बातें कहनी हैं।

रो०—क्या ?

गो०—तुम मेरी कौन हो ?

रो०—कोई नहीं। जितने दिनों तक पैरपर पड़ी रहने दें, दासी हूं; अन्यथा कोई नहीं।

गो०—पैर छोड़कर मैंने तुम्हें माथेपर बिठाया था। राजों जैसा ऐश्वर्य, राजासे अधिक सम्पत्ति, अकलंक चरित्र, अत्याज्य धर्म, सबका तुम्हारे लिये त्याग कर दिया। तुम कौन हो, रोहिणी! जिसके लिये मैं यह सब परित्याग कर बनवासी हुआ ? तुम कौन हो रोहिणी ! जो तुम्हारे लिये भ्रमर,—जगतमें अतुलनीय, दुःखमें अमृत, वह भ्रमर—उसे त्याग दिया ?

यह कहते हुए गोविन्दलाल दुःख-क्रोधके वेगको सम्भाल न सके और उन्होंने रोहिणीपर पदाघात किया।

रोहिणी गिर पड़ी। कुछ बोली नहीं, रोने लगी। लेकिन आंख के आंसू गोविन्दलाल देख न सके।

गोविन्दलालने कहा,—"रोहिणी ! खड़ी हो।"

रोहिणी खड़ी हो गयी।

गो०—तू एक बार मरनेके लिये गयी थी। फिर मरनेका साहस है ?

रोहिणी उस समय मृत्यु-कामना कर रही थी। बड़े ही कातर स्वरमें बोली,—"अब क्यों न मरना चाहूंगी ? भाग्यमें जो बदा था, वह हुआ।

गो०—तो खड़ी रहो। खबरदार हिलना नहीं।

रोहिणी खड़ी रही।

गोविन्दलालने पिस्तौलका बाक्स खोला। पिस्तौल बाहर निकाला। वह भरी हुई थी। भरी ही रहती थी।

पिस्तौल लेकर और उसे रोहिणीके सामने तानकर गोविन्दलाल ने कहा,—"बोलो मरना चाहती हो?"

रोहिणी विचारमें पड़ गयी। जिस दिन अनायास, अक्लेश, वारुणी जलमें डूब कर मरने गयी थी, आज वह दिन रोहिणी भूल गयी। वह दुःख नहीं, इसलिये वह साहस भी न रहा। उसने सोचा,—"क्यों मरूं? न हो, यह त्याग दें, त्याग दें, इन्हें कभी भूल नहीं सकती, लेकिन इतनेके लिये मरूंगी क्यों? इनका मनमें ध्यान करूंगी, दुःखी अवस्था आनेपर भी इनका ध्यान करूंगी, इस प्रसादपुरकी सुखराशिका ध्यान करूंगी, यह भी तो एक सुख है, यह भी तो एक आशा है? मरूं क्यों?"

रोहिणी बोली,—"न मरूंगी, मारना नहीं। चरणमें न रखो, विदा कर दो।"

गो०—दें?

यह कहकर गोविन्दलालने पिस्तौल उठाकर रोहिणीके ललाटका लक्ष्य किया।

रोहिणी कांप उठी। बोली,—"मारो मत! मेरी नयी उमर है; नये सुख हैं। मैं अब तुम्हें मुंह न दिखाऊंगी। अब तुम्हारी राहका रोड़ा न बनूंगी। अभी चली जाती हूं। मुझे न मारो।"

गोविन्दलालकी पिस्तौल गर्जन कर उठी। बड़ा शब्द हुआ। इसके बाद सब अन्धकार। रोहिणी मर कर जमीन पर गिर पड़ी।

गोविन्दलालने पिस्तौल वहीं फेंक दी और वह बड़ी तेजीसे घरके बाहर निकले।

पिस्तौलकी आवाज सुनकर रूपा आदि नौकर देखने दौड़े। उन सबने देखा कि रोहिणीका शरीर बालक द्वारा विच्छिन्न पद्मि-नीकी तरह पड़ा हुआ है। गोविन्दलालका कहीं पता नहीं है।

——:०:——

दशवां परिच्छेद

दूसरा बर्ष

उसी रात चौकीदारने थानेमें आकर खबर दी कि प्रसादपुरकी कोठीमें खून हो गया है। सौभाग्यवश थाना वहांसे ६ कोस दूर है। दारोगाके आनेमें दूसरे दिनका एक पहर बीत गया। आकर वह खूनकी तफतीशमें लग गये। कायदेके मुताबिक उन्होंने सूरत हाल और लाशकी पहचान रिपोर्ट सहित भेज दी। इसके बाद रोहिणीकी लाश पोस्टमार्टमके लिये बांध-छांदकर एक बैलगाड़ी पर लाद कर भेज दी गयी। बादमें थानेदारने स्नानादि कर भोजन किया। इसके उपरान्त अपराधीके अनुसन्धानमें लग गये। गोविन्दलाल रोहिणीको मार कर उसी समय घरसे भागे थे और फिर घरमें लौटे न थे। कौन कह सकता है कि एक दिन और एक रातका अवसर पाकर गोविन्दलाल कितनी दूर

निकल गये होंगे ? किसीने उन्हें देखाभी नहीं। वह किधर भागे हैं, यह भी कोई नहीं जानता। उनका नाम तक कोई जानता न था। गोविन्दलालने प्रसादपुरमें आकर कभी भी अपना नाम-धाम प्रगट नहीं किया। वहां उन्होंने अपना नाम चुन्नीलाल दत्त प्रचारित किया था। उनके नौकर भी जानते न थे कि वह किस देशसे यहां आये हैं। कभी इसको कभी उसको पकड़ कर गवाही लेते दरोगा घूमने लगे। लेकिन गोविन्दलालका कोई अनुसन्धान वह लगा न सके। अन्तमें उन्होंने अपनी वह रिपोर्ट पेश कर दी, जिसमें साफ लिख दिया था कि असामी फरार है।

इसके बाद यशोहरसे फिचलखां नामक एक खुफिया जासूस इस मुकदमेंकी छान-बीनके लिये भेजा गया। फिचलखांकी अनुसन्धान प्रणाली यहां सविस्तार लिखनेकी आवश्यकता नहीं। अवश्य ही उन्होंने कितने ही पत्र घरकी तलाशीमें पाये। उसके द्वारा उन्होंने गोविन्दलालका प्रकृत नाम-धाम जान लिया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उन्होंने छद्मवेशमें हरिद्राग्राम तककी यात्रा की। लेकिन गोविन्दलाल हरिद्राग्राम गये न थे अतः फिचलखां गोविन्दलालको वहां न पा सकनेके कारण वापस हो गया।

इधर निशाकरदास उस कराल-काल रात्रिमें रोहिणीको अकेली विपन्न छोड़कर प्रसादपुर बाजारके अपने डेरेपर लौट आये। वहां माधवीनाथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माधवीनाथ गोविन्दलालके सुपरिचित ससुर हैं, इसलिये वह उनसे मिलने न गये थे। अब निशाकरने आकर सारा विस्तृत हाल उनसे कहा। सुनकर माधवी-

नाथने कहा,—"काम तो अच्छा नहीं हुआ। ऐसी अवस्थामें तो खून तक हो जा सकता है। इसका क्या परिणाम होता है, यह जाननेके लिये दोनों ही व्यक्ति प्रसादपुर बाजारमें छिपे हुए पता लगाने लगे। सबेरे ही यह समाचार उन्होंने सुना कि चुन्नीलाल दत्त अपनी स्त्रीका खूनकर भाग गया है। इस समाचारपर विशेष भीत होकर वह लोग शोकाकुल हुए। भय गोविन्दलालके लिये था, लेकिन अन्तमें उन्होंने देखा कि दारोगा कुछ कर न सका। गोविन्दलालका कोई पता नहीं है। इसपर वह लोग एक प्रकारसे निश्चिन्त, लेकिन उसपर भी बहुत दुखी हृदयसे उस जगहसे प्रस्थान किया।

——:o:——

ग्यारहवां परिच्छेद

तीसरा वर्ष

भ्रमर मरी नहीं। क्यों नहीं मरी, यह नहीं कह सकते। इस संसारमें सबसे बड़ा दुःख यह है कि मरनेके उपयुक्त समयपर कोई मरता नहीं। असमयमें सभी मरते हैं। शायद यही कारण है कि भ्रमर भी नहीं मरी। जो हो, भ्रमर भयानक रोगसे छूटकर कुछ अच्छी हुई है। इस समय भ्रमर फिर अपने पिताके घर है। माधवीनाथ गोविन्दलालका जो समाचार लाये थे, उनकी पत्नीने उसे एकान्तमें अपनी बड़ी लड़की—भ्रमरकी बहनसे कह दिया। उनकी बड़ी लड़कीने गुप्तरूपसे भ्रमरसे सब कहा। अब भ्रमरकी बड़ी बहन यामिनी बोली,—"अब वह अपने हरिद्राग्राममें आकर

क्यों नहीं रहते ? ऐसी अवस्थामें शायद कोई आपद्-विपद् न रहेगी।"

भ्रमर—विपद् कैसे न रहेगी ?

यामिनी—वह प्रसादपुरमें नाम बदल कर रहते थे। वही गोविन्दलाल बाबू हैं, यह कोई नहीं जानता।

भ्रमर—तुमने सुना नहीं कि हरिद्राग्राममें पुलिस जांच करनेके लिये आयी थी ? तब भला कैसे नहीं जानती ?

यामिनी—मान लो कि वह जान गयी है। तब भी वहां जाकर अपनी सम्पत्तिपर अधिकार करके बैठनेसे उन्हें रुपयोंकी कमी न होगी। पिताजीका कहना है कि रुपयेसे पुलिश वशमें की जा सकती है।

भ्रमर रोने लगी। बोली—"यह परामर्श उन्हें कौन दे ? कहां उनसे मुलाकात होगी, कि यह सत्परामर्श उन्हें दिया जा सके ? पिताजीने एक बार उनकी खोज-खबर ली, क्या एक बार फिर, उनकी खोज-खबर न लेंगे ?

यामिनी—पुलिसवाले कितना पता लगानेमें तेज होते हैं, जब वही पता नहीं लगा पाते हैं, तो कैसे कहा जाय कि पिताजी पता लगा सकेंगे ? लेकिन हमें ऐसा विश्वास होता है कि गोविन्दलाल खुद हरिद्राग्राममें आकर बैठेंगे। प्रसादपुरकी घटनाके बाद ही यदि वह गांव लौट आते तो लोग सहज ही अनुमान लगा लेंगे कि यहीं गोविन्दलाल हैं, जो प्रसादपुरसे भागकर यहां आ बैठे हैं। जान पड़ता है; इसी लिये वह इतने दिनों तक फरार हैं, और यहां

आते नहीं हैं। अब भरोसा है कि शायद आयें।

भ्र०—मुझे कोई भरोसा नहीं।

या०—यदि आयें ?

भ्र०—यदि यहां आनेसे उनका मंगल हो, तो देवताओंके चरणोंमें मैं कायमनोवाक्यसे प्रार्थना करती हूं कि वह चले आयें साथ ही यदि इसमें अमंगल हो, तो भगवानसे यही मनाती हूं कि वह कभी हरिद्राग्राममें न आयें भगवान उन्हें ऐसी मति दें, जिसमें वह निरापद रह सकें।

या०—मेरे विचारसे, बहन! तुम्हारा वहीं रहना कर्त्तव्य है। क्या जाने किस दिन वे रुपयोंके अभावमें वहां आ जायें ? शायद अमलों पर अविश्वास कर उनसे मुलाकात न करें। तुम्हें न देखकर वह लौट जा सकते हैं।

भ्र०—मुझे यही तो रोग है। कब मरें—कब छुट्टी मिले—मैं वहां किसके आश्रयमें रहूंगी ?

या०—न हो, कहो हमलोगोंमेंसे कोई चलकर वहां तुम्हारे साथ रहें। फिर भी इस समय तुम्हारा वहीं रहना कर्त्तव्य है।

भ्रमरने सोचकर कहा,—"अच्छा मैं हरिद्राग्राम जाऊंगी। मांसे कह दो कि मुझे कल ही वहां पहुंचवा दें। अभी तुमलोगोंमें से किसीके जानेकी जरूरत नहीं। लेकिन मेरे विपद्‌में तुमलोग जरूर खड़ी हो जाना।"

या०—कैसी विपद्, भ्रमर ?

भ्रमरने रोते-रोते कहा,—यदि वह आ जायें ?"

या०—इसमें विपद् कैसी भ्रमर ! तुम्हारा खोया हुआ धन यदि घरमें आ जाये—तो इससे बढ़कर खुशीकी और कौनसी बात है ?

भ्रमर—खुशी, बहन ? मेरे लिये खुशीकी क्या बात है ?

भ्रमर आगे बात कर न सकी। उसके मनकी बात भ्रमर समझ न सकी। भ्रमरके रोनेमें मर्मघाती वेदना है, यामिनी उसे देख न सकी। यामिनी समझ न सकी कि गोविन्दलाल हत्याकारी है—खूनी है—भ्रमर इसे भूल नहीं पाती है।

——:o:——

बारहवां परिच्छेद

पांचवां वर्ष

भ्रमर फिर ससुराल गयी। रोज प्रतीक्षा करने लगी—शायद स्वामी आ जायें। लेकिन स्वामी तो नहीं आये। दिन गये—महीने गये, लेकिन पति न लौटे। कोई खबर भी न मिली। इस तरह तीसरा वर्ष भी बीत गया। गोविन्दलाल न आये। इसके बाद चौथा वर्ष भी बीत गया गोविन्दलाल न आये। इधर भ्रमरकी बीमारी बढ़ती गयी। दमा-खांसीका रोग है—नित्य क्षयको प्राप्त हो रहा है—वह यमराजकी राह पर अग्रसर है—शायद इस जन्ममें मुलाकात न होगी ?

पांचवां वर्ष चलने लगा। पांचवें वर्षमें बड़ा झमेला खड़ा हुआ। हरिद्राग्राममें खबर आयी कि गोविन्दलाल गिरफतार हो

गये हैं। खबर मिली कि गोविन्दलाल वैरागी वेशमें श्रीवृन्दावनमें वास कर रहे थे—वहींसे पुलिस गिरफ्तार कर उन्हें यशोहर ले गयी है। यशोहरमें उनपर मुकदमा चलेगा।

कान-ही-कान यह खबर भ्रमरको लगी। खबरका सूत्र यह है कि गोविन्दलालने भ्रमरके दीवानको पत्र लिखा है कि "मैं जेल जा रहा हूं—मेरी पैतृक सम्पत्तिसे रुपये खर्चकर मुझे बचाना यदि तुम लोग उचित समझते हो, तो यही समय है। मैं इसके योग्य नहीं हूं। मुझे बचनेकी इच्छा नहीं है। फिर भी भिक्षा यही है कि फाँसी न चढ़ना पड़े। जनरव रूपमें यह खबर घरमें देना—यह न प्रकट करना कि मैंने पत्र लिखा है।" दीवानजीने पत्रकी बात प्रकट न की। किंवदन्ती रूपमें घरमें खबर भेजवा दी।

भ्रमरने सुनते ही पिताको बुलवानेके लिये आदमी भेजा। सुनते ही माधवीनाथ कन्याके पास पहुंच गये। भ्रमरने उनके सामने नोटोंका पचास हजारका बण्डल रखकर सजलनयन होकर कहा,—"बाबूजी! अब जो कुछ सकते हों, कीजिये।—देखो, मुझे आत्महत्या न करनी पड़े।"

माधवीनाथने भी रोते-रोते कहा,—"बेटी! निश्चिन्त हो जाओ। मैं आज ही यशोहरकी यात्रा करता हूं। कोई चिन्ता न करना। गोविन्दलालने जो खून किया है, उसका कोई सुबूत नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करके जाता हूं कि तुम्हारे अड़तालीस हजार रुपये बचा लाऊंगा—अपने दामादको घर लौटा लाऊंगा।"

इसके बाद माधवीनाथने यशोहरकी यात्रा की। वहां जाकर उन्होंने सुना कि प्रमाणकी अवस्था बड़ी भयावह है। इन्सपेक्टर फिचल खांने मुकदमेकी छानबीन कर गवाह जुटाए हैं। उन्होंने रूपा-सोना वास्तविक चश्मदीद गवाहोंको पाया ही नहीं। सोना निशाकरकी सेवामें था और रूपा कहां किस देशमें भाग गया है, पता नहीं। प्रमाणकी यह दुरवस्था देखकर फिचल खांने कुछ नगद खर्च कर तीन गवाह तैयार किये। गवाहोंने मजिस्ट्रेटके सामने जाकर कहा,—"हम लोगोंने अपनी आंखोंसे देखा कि गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलाल दत्तने पिस्तौलसे गोली चलाकर रोहिणीकी हत्या की। हम लोग वहां गाना सुननेके लिये गये थे।" मजिस्ट्रेट साहब पक्के विलायती आचार-विचार वाले थे, उन्होंने तुरत इतने ही प्रमाणपर मुकदमा सेशन सुपुर्द कर दिया। जिस समय माधवीनाथ यशोहर पहुंचे, उस समय गोविन्दलाल जेलमें पड़े सड़ रहे थे। माधवीनाथने पहुंचकर सारा हाल सुना और बड़े दुःखी हुए।

गवाहोंका नाम-धाम मालूम कर माधवीनाथ उनके घर पहुंचे। उन्होंने उन लोगोंसे कहा,—"देखो, भाई! मजिस्ट्रेटके सामने जो कुछ कहना था कह चुके, अब जजके सामने दूसरे तरहकी बातें कहनी होंगी। साफ कहना होगा कि हम इस बारेमें कुछ नहीं जानते। यह पांच-पांच सौ नगद लो। आसामीके छूट जानेपर पांच-पांच सौ और दूंगा।"

गवाहोंने कहा,—"झूठी हलफमें जो दोषी ठहरेंगे, सो?"

माधवीनाथने कहा,—"डरो मत। मैं रुपये खर्चकर गवाहियों

से प्रमाणित करा दूंगा कि फिचल खांने मार-पीट और डराकर तुम्हें मजिस्ट्रेट साहबके सामने झूठी गवाही देनेके लिये बाध्य किया था।"

गवाहोंके चौदह पुरखोंने भी कभी इकट्ठा हजार रुपये न देखे थे। वह सब उसी समय तैयार हो गये।

सेशनमें विचारका दिन उपस्थित हुआ। गोविन्दलाल कठघरेके भीतर खड़े हुए। पहले गवाहने उपस्थित होकर हलफ ली। सरकारी वकीलने उससे पूछा,—"तुम इस गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलालको पहचानते हो?"

गवाह—नहीं, याद तो नहीं आता।

वकील—कभी देखा है?

गवाह—नहीं।

वकील—रोहिणीको पहचानते थे?

गवाह—कौन रोहिणी?

वकील—प्रसादपुरकी कोठीमें जो थी?

गवाह—हमारे बापके पुरखे भी कभी प्रसादपुरकी कोठीमें नहीं गये।

वकील—रोहिणी कैसे मरी?

गवाह—सुना कि आत्महत्याकी थी, उसने।

वकील—खून होनेके बारेमें कुछ जानते हो?

गवाह—कुछ नहीं।

इसपर वकीलने, गवाह मजिस्ट्रेटके सामने जो गवाही दे चुका

था, उसे पढ़कर सुनाया। फिर पूछा,—"क्यों ? तुमने मजिस्ट्रेटके सामने यह सब बातें कही थीं ?"

गवाह—हां, कही थीं।

वकील—अगर कुछ नहीं जानते थे, तो क्यों कहा ?

गवाह—मारकी चोटसे। फिचल खांने मारने-पीटनेमें कुछ भी उठा नहीं रखा था।

यह कहता हुआ गवाह रो पड़ा। दो-चार दिन पहले जमीनके बारेमें भाईसे मार-पीट हुई थी, उसके दाग अभी तक थे। गवाहने मौका पाकर उन्हीं दागोंको फिचल खांकी मारके दाग कहकर जजको दिखाये।

सरकारी वकीलने अप्रतिभ होकर दूसरे गवाहको बुलवाया। उस दूसरे गवाहने भी वही बातें कहीं। उसने अपने पीठ पर नील रंगके दाग बना दिये थे, उन्हें चोट बता कर दिखाया। हजार रूपयोंके लिये सब कुछ हो सकता है।

तीसरे गवाहका भी वही हाल रहा। इसपर जजने प्रमाणाभाव लिख कर असामीको रिहा कर दिया। साथ ही जजने फिचल खां पर अत्यन्त रूष्ट होकर मजिस्ट्रेटको उसके चरित्रकी जांचका आदेश दिया।

विचारके समय गवाहकी ऐसी हालत देखकर गोविन्दलाल विस्मित हुए। इसके बाद दर्शकोंकी भीड़में उन्होंने जब माधवीनाथको देखा, उसी समय सब समझ गये। रिहा होनेके बाद भी उन्हें एकबार फिर जेल-हवालतमें जाना पड़ा। वहांसे रिहाईका

परवाना प्राप्त होने पर वे रिहा हो सकते थे। वह जब जेल आ रहे थे, उसी समय कौशलतापूर्वक माधवीनाथने गोविन्दलालके निकट होकर धीरेसे कहा,—"रिहाई पानेके बाद एकबार मुझसे मिलना। मेरा डेरा अमुक स्थानमें है।"

लेकिन गोविन्दलाल रिहा होनेके बाद माधवीनाथके पास नहीं गये। कहां गये, कोई जान न सका। माधवीनाथने चार-पांच दिनों तक उनकी खोज की, लेकिन कोई पता न लगा।

अन्तमें माधवीनाथको अकेले ही हरिद्राग्राम वापस आना पड़ा।

——:o:——

तेरहवां परिच्छेद

छठा वर्ष

माधवीनाथने भ्रमरको आकर खबर दी की गोविन्दलाल रिहा हो गये, लेकिन घर नहीं आये, कहां चले गये पता लग न सका। माधवीनाथके हट जानेपर भ्रमर खूब रोई। लेकिन किसलिये रोई नहीं कह सकते।

इधर गोविन्दलाल रिहा होते ही प्रसादपुर गये। जाकर उन्होंने देखा कि, वहां कुछ भी नहीं है। और कोई भी नहीं है। वहां जाकर उन्होंने सुना कि उस अट्टालिकामें जो कुछ था, उसमें, बहुत कुछ तो लूट लिया गया। जो कुछ बचा था, वह लावारिस कहकर नीलाम कर दिया गया। केवल मकान मात्र खड़ा है, उसके भी खिड़की-दरवाजे कितने ही भूत उठा ले गये। प्रसादपुरके

बाजारमें दो-एक दिन ठहर कर गोविन्दलालने मकान, ईंट-पत्थर पानीके मोल बेंच कर जो कुछ प्राप्त हो सका, लेकर कलकत्ते चले आये।

कलकत्तेमें बहुत ही गुप्त रूपसे और बहुत सामान्य अवस्थामें गोविन्दलाल अपना दिन बिताने लगे। प्रसादपुरसे बहुत थोड़े ही रुपये अपने पास लाये थे, वह एक सालमें हो समाप्त हो गया। अब दिन बीतनेकी भी सम्भावना न रही। तब ६ वर्षोंके बाद गोविन्दलालने सोचा कि भ्रमरको एक पत्र लिखूं।

गोविन्दलाल कागज, कलम, दावात लेकर भ्रमरको पत्र लिखनेके लिये बैठे। हम सत्य कहेंगे—पत्र लिखने बैठकर गोविन्दलाल बहुत रोये। रोते-रोते उन्होंने मनमें सोचा कि इसीका क्या ठिकाना है कि भ्रमर जिन्दा है ? किसे पत्र लिखूं ? इसके बाद फिर सोचा, एक बार लिखकर तो देखूं। यदि पत्र लौट आया, तो समझ जाऊंगा—भ्रमर नहीं है।

क्या लिखें ? इस भावनामें कितनी देर तक गोविन्दलाल बैठे रहे, कैसे बताया जाय ? अन्तमें उन्होंने सोचा, जिसे बिना दोष मृतके समान छोड़ दिया, यही दोष लिखनेमें हर्ज क्या है ? अन्तमें बहुत-सोच-समझकर गोविन्दलालने पत्र लिखा,—

"भ्रमर !

६ वर्षोंके बाद यह पापी फिर तुम्हें पत्र लिख रहा है। इच्छा हो पत्र पढ़ना, न इच्छा हो, बिना पढ़े ही फाड़ फेंकना।

"मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा था और जो-जो हुआ, शायद तुमने

सब सुना होगा। यदि कहूं कि यह सब मेरा कर्मफल था तो शायद तुम समझोगी कि तुम्हारा मन रखनेके लिये मैं ऐसा लिख रहा हूं। क्योंकि आज मैं तुम्हारे आगे भिखारी हूं।

"मैं इस समय कंगाल हूं। तीन वर्षों तक भिक्षा मांगकर पेट चलाया। तीर्थ-स्थानमें था—तीर्थ स्थानमें भिक्षा मिल जाती थी। यहां भीख भी नहीं मिलती—फलतः मैं अन्नके अभावमें मर रहा हूं।

"मेरे जानेकी एक जगह थी—काशीमें माताकी गोदमें। लेकिन मांका काशीवास हो गया है, शायद यह जानती होगी। फलतः मेरे लिये अब स्थान भी नहीं—अन्न भी नहीं।

"इसी लिये, मैंने मनमें सोचा है, हरिद्राग्राममें फिर अपना काला मुंह दिखाऊंगा—अन्यथा खाऊंगा क्या? जिसने तुम्हें बिना अपराध परित्याग कर, स्त्री हत्या तक किया, उसे अब काहे की लज्जा? मैं अपना काला मुंह दिखा सकता हूं—लेकिन तुम सम्पत्तिकी अधिकारिणी हो—घर तुम्हारा है—मैंने तुमसे बैर किया है—तुम क्या मुझे स्थान दोगी?

"पेटकी ज्वालासे तुम्हारा आश्रय चाहता हूं—क्या न दोगी?"

इस तरह पत्र लिखकर नीचा-ऊंचा विचार कर अन्तमें गोविन्दलालने उसे डाकमें छोड़ दिया। यथाकाल पत्र भ्रमरके हाथमें पहुंचा।

पत्र पाते ही भ्रमर अक्षर पहचान गयी। पत्र खोलकर कांपते-कांपते भ्रमरने जाकर अपने शयनगृहका दरवाजा बन्द कर लिया।

तब एकान्तमें बैठकर भ्रमर आंखोंसे जलधार आंसू बहाती हुई पत्र पढ़ने लगी। उसने उस पत्रको एक बार, दो बार, सौ बार, हजार बार, बार-बार पढ़ा। उस दिन भ्रमरने फिर अपना दरवाजा न खोला। खाने-पीनेके लिये जिसने आकर पुकारा, सबसे उसने कह दिया कि "मुझे बुखार आ गया है, मैं न खाऊंगी।" भ्रमरको सदा ही ज्वर रहता है, लोगोंने विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन निद्राशून्य शय्यासे जब भ्रमर उठी, तो सचमुच उसे ज्वर था। लेकिन उस समय उसका चित्त स्थिर था—विकार रहित था। पत्रका उत्तर जो लिखना होगा, उसने पहले ही सोच लिया था, भ्रमरने उसे सहस्र-सहस्र बार विचार कर स्थिर किया था, अब उसे सोचनेकी जरूरत न हुई। सारी बातें पहलेसे स्थिर कर ली थी।

उसने पत्रमें 'सेविका' नहीं लिखा। लेकिन पति हर अवस्थामें प्रणम्य है, अतः उसने लिखा,—

"प्रणाया शतसहस्र निवेदनञ्च विशेष।"

इसके बाद लिखा,—"आपका पत्र प्राप्त हुआ। सम्पत्ति आपकी है। मेरा होनेपर भी मैं उसे दान कर चुकी हूं। आपको याद होगा, जानेके समय आपने उसी दान पत्रको फाड़कर फेंक दिया था। लेकिन रजिस्ट्रेशन आफिसमें उसकी नकल है। मैं जो दान कर चुकी हूं यह बात प्रमाणित है। आज भी वह वर्त्तमान है।

"अतएव आप निर्विघ्न हरिद्राग्राम आकर अपनी सम्पत्तिपर अधिकार कर सकते हैं। घर आपका है।

"इन रुपयोंमें थोड़ेकी मैं प्रार्थना करती हूं। आठ हजार रुपये उनमेंसे मैं लेती हूं। तीन हजार रुपयोंसे गङ्गातटपर मैं एक मकान बनवाऊँगी और शेष पांच हजार रुपये मेरी जीविकाके लिये यथेष्ट हैं।

"आपके आनेका सारा बन्दोवस्त कर मैं पित्रालय चली जाऊंगी। जब तक मेरा नया मकान नहीं बन जाता, तब तक मैं पिताके घर रहूंगी। आपके साथ इस जन्ममें कोई साक्षात्‌की सम्भावना नहीं है। इसमें मैं सन्तुष्ट हूं—आप भी सन्तुष्ट होंगे, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

"मैं आपके दूसरे पत्रकी प्रतीक्षामें हूं।"

यह पत्र यथासमय गोविन्दलालके पास पहुंचा। उफ! कैसा भयानक पत्र है! जरा भी कोमलता नहीं। गोविन्दलालने भी लिखा था—६ वर्ष बाद लिखता हूं, लेकिन भ्रमरके पत्रमें वह बात भी नहीं। यह वही भ्रमर है!

गोविन्दलालने पत्र पढ़कर लिखा,—"मैं हरिद्राग्राम न आऊंगा, जिससे मेरे यहां गुजारा हो सके, ऐसी मासिक भिक्षा मुझे यहीं भेज दिया करो।"

भ्रमरने उत्तर लिखा,—"हर महीने पांच सौ रुपये भेजूंगी। और भी अधिक भेज सकती हूं, लेकिन इस डर नहीं भेजती हूं कि उसका अपव्यय हो सकता है। इन कई वर्षोंमें मैंने बहुत कुछ रुपये जमा किये हैं, वह सब आपके हैं। साथ ही एक निवेदन और है, हर वर्षके खर्चसे जो रुपये बच रहे हैं और जमा है, यहां आकर

यदि आप उनका भोग करें, तो बहुत अच्छा हो। मेरे लिये देश-त्यागी न होइयेगा—मेरे दिन तो समाप्त हो रहे हैं।"

गोविन्दलाल कलकत्तेमें ही रहे। दोनों ही समझ गये; यही अच्छा है।

—:o:—

चौदहवां परिच्छेद

सातवां वर्ष

सचमुच भ्रमरके दिन समाप्त हो रहे हैं। बहुत दिनोंसे भ्रमर की सांघातिक पीड़ा चिकित्साकी वजहसे उपशमित थी। लेकिन रोग अब चिकित्सासे बली हो गया था। भ्रमरका दिन प्रतिदिन क्षय हो रहा है।

अगहनके महीनेमें भ्रमर खाटपर पड़ गयी। फिर उसने शय्या का त्याग न किया। माधवीनाथ स्वयं आकर और पासमें रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी भी हरिद्राग्राममें आकर भ्रमरकी अन्तिम सेवा-सुश्रूषामें लग गयी।

रोग चिकित्सासे दबा नहीं। पूसका महीना भी इसी तरह बीता। माघमें भ्रमरने ओषधि खाना भी छोड़ दिया। ओषधि-सेवन अब व्यर्थ था। उसने यामिनीसे कहा,—"अब दवा न खाऊंगी, बहन! सामने ही फाल्गुनका महीना है—फाल्गुन मासकी पूर्णिमा की रातको मरूंगी। देखना बहन! फाल्गुनकी वह पूर्णिमा बीतने न पाये। अगर देखना कि फाल्गुनकी पूनमकी रात बीतना चाहती

है—तो गला दबा देना न भूलना। रोगसे हो, गला दबाकर हो, फाल्गुनकी वह ज्योत्स्ना रात्रिको मरना ही होगा। याद रखना, बहन !"

यामिनी रोई—लेकिन भ्रमरने फिर दवा न खाई। ओषधि खाती न थी—रोग शान्त न था—लेकिन भ्रमर दिन-पर-दिन प्रसन्न बदन हो रही थी।

इतने दिनोंके बाद भ्रमरने फिर हंसी-तमाशा शुरू किया।—पूरे ६ वर्षके बाद यह हंसी-तमाशा था। दीप बुझनेके पहले तेज-उद्दीप्त हो रहा था।

जितने दिन जाने लगे-अन्तिमकाल जितना समीप आने लगा, भ्रमर उतनी ही स्थिर, प्रफुल्ल हास्यमूर्ति बन रही थी। अन्तमें वह भयंकर आखिरी दिन उपस्थित हुआ। भ्रमर परिजनोंकी चञ्चलता, और यामिनीका रोना देखकर समझ गयी कि शायद आज दिन पूरा हुआ। शरीरकी यन्त्रणासे भी ऐसा ही अनुभव होने लगा। तब भ्रमरने यामिनीसे कहा,—"आज अन्तिम दिन है।"

यामिनी रो पड़ी। भ्रमर बोली,—बहन! आज आखिरी दिन है—मेरी कुछ भिक्षा है—मेरा मन रख देना।"

यामिनी रोती रही—जवाब दे न सकी।

भ्रमर बोली—"मेरी एक ही भिक्षः है—आज रोना नहीं।—मेरे मर जाने पर रो लेना। मैं मना करने न आऊंगी—लेकिन

आज तुम लोगोंसे कई बातें कहनी हैं, कह सकूंगी तो बिना कष्टके मर सकूंगी, यही साध है।

यामिनो आंखोंका आंसू पोंछ कर पासमें बैठी, लेकिन गला भरा होनेके कारण, हृदय-रुलाईसे भरा रहनेके कारण वह बोल न सकी।

भ्रमर बराबर कहती गयी,—"और एक भिक्षा—तुम्हें छोड़ कर यहां और कोई न आये। समय पर सबके साथ मुलाकात कर लूंगी—लेकिन अभी यहां कोई न आये।"

यामिनी कितनी देर रुलाई रोक सकती थी ?

क्रमशः रात होने लगी। भ्रमरने पूछा,—"दीदी ! रात कैसी जोत्स्नामयी है—कैसी बहारदार चांदनी है ?"

यामिनीने खिड़कीके पल्ले खोलकर कहा,-गजबकी चाँदनी है !"

भ्र०—तो सारी खिड़कियाँ खोल दो। मैं चाँदनी देखकर मरूंगी। जरा देखो तो, इस खिड़कीके नीचे जो बगीचा है, उसमें फूल फूले हैं या नहीं ?"

इसी खिड़कीके पास खड़ी होकर प्रातःकाल भ्रमर गोविन्दलालसे बातें करती थी। आज सात वर्ष हुए भ्रमर इन खिड़कियोंके पास नहीं जाती—वह खिड़कियाँ खोली न गयीं।

यामिनी बड़े कष्टसे उस खिड़कीको खोलकर और फिर देखकर बोली,—"कहाँ, यहाँ तो बगीचा है ही नहीं। यहाँ तो केवल खड़का बन है—दो-एक मरे-सूखे पेड़ हैं लेकिन उनमें फूल कहाँ ?"

भ्रमर बोली,—सात वर्ष हुए यहां पहले लहलहाता बाग था। कुसेवा हो गया। मैंने सात वर्षसे नहीं देखा।"

बहुत देर तक भ्रमर चुप रही। इसके बाद वह फिर बोली,—"जहांसे हो सके दीदो! आज मुझे फिर फूल मंगा दो देखती नहीं हो, आज मेरी फूल शय्या है।

यामिनीकी आज्ञा पाते ही दास-दासियोंने राशि-राशि फूल ला दिये। भ्रमरने कहा,—"फूल मेरे बिछौना पर छिड़क दो-आज मेरी फूल शय्या है।"

यामिनीने वैसा ही किया। तब भ्रमरकी आंखोंसे जलकी धारा बह पड़ी। यामिनीने कहा,—"बहन! क्यों रोती हो?"

भ्रमर बोली,—"दीदी! एक ही दुःख बहुत बड़ा रह गया। उस दिन वह मुझे त्याग कर काशी गये, उसी दिन हाथ जोड़कर भगवानसे भिक्षा चाही थी, एक दिन उनके साथ मुलाकात हो जाये। बड़ी स्पर्द्धाके साथ मैंने कहा था, यदि मैं सती होऊँगी तो उनके साथ मेरी फिर मुलाकात होगी। लेकिन कहां, फिर तो मुलाकात न हुई। आजके दिन मृत्युके दिन दीदी! यदि एक बार फिर मुलाकात हो जाती। एक दिनमें दीदी! सात वर्षके दुःख भूल जाती।"

यामिनीने कहा,—देखोगी?" भ्रमर बिजलीको तरह चमक कर बोली,—"किसकी बात कहती हो?"

यामिनाने स्थिर होकर कहा,—"गोविन्दलालकी बात। वह यहाँ आ गये हैं बाबूजीने उन्हें तुम्हारी बीमारीका समाचार दिया

था। उसे सुनकर वह एक बार तुमसे मिलने आये हैं। आज ही पहुंचे हैं। तुम्हारी अवस्था देखकर भयसे अभीतक तुमसे कह न सकी। वह भी साहसकर आ नहीं पाते हैं।"

भूमरने रोकर कहा,—"एक बार मिला दो, दीदी ! इस जन्ममें और एक बार देखूं, इस समय बस एक बार और!"

यामिनी उठकर गयी। थोड़े ही देर बाद निःशब्द पैर रखते हुए गोविन्दलाल—सात वर्षके बाद अपने शयनगृहमें फिर आये।

दोनों ही रो रहे थे। उनमेंसे एक भी बात कर न सका। भूमरने स्वामीके पास आकर बिछौनेपर बैठनेका इशारा किया। गोविन्दलाल रोते-रोते आकर बिछौनेपर बैठे। भूमरने उन्हें और समीप आनेके लिये कहा—गोविन्दलाल और समीप आगये। इसके बाद भूमरने अपनी पहुंचके अन्दर आये पैरोंकी धूली हाथसे उठाकर कपालपर लगाई। बोली,—"आज मेरे सारे अपराधोंको क्षमा कर, आशीर्वाद दो कि मैं जन्मजन्मान्तरमें सुखी होऊं।

गोविन्दलालके मुंहसे कोई शब्द निकल न पाये। उन्होंने भूमरका हाथ अपने हाथमें ले लिया। इसी तरह हाथमें हाथ रहा। बहुत देर तक रहा। भूमरने निःशब्द प्राण त्याग किया।

——:o:——

पन्द्रहवां परिच्छेद

भूमर मर गयी यथारीति उसका अन्तिम संस्कार हुआ। संस्कार कर गोविन्दलाल आकर घर बैठे। घर लौटनेके बादसे अबतक उन्होंने किसीके साथ बातें न की थी।

फिर रात हुई। भ्रमरकी मृत्युके दूसरे दिन जैसे सूर्य सदा आते थे वैसे ही उगे। वृक्षके पत्ते छायालोकसे चमक उठे। सरोवरका कृष्णवर्ण जल लहरे लेता हुआ चमक उठा। आकाशके काले मेघ सादे दिखाई देने लगे।—मानो भ्रमर मरी ही नहीं। गोविन्दलाल बाहर निकल आये।

गोविन्दलालने दो स्त्रियोंसे प्रेम किया था—भ्रमरसे और रोहिणीसे। रोहिणी मरी—भ्रमर भी मरी। रोहिणीके सौन्दर्यपर आकृष्ट हुए थे—यौवनकी अतृप्त रूप-तृष्णा शान्त कर न पाये। भ्रमरको त्यागकर उन्होंने रोहिणीको ग्रहण किया था। रोहिणीको ग्रहण कर वह जान गये कि यह भ्रमर नहीं है—यह रूप तृष्णा है; यह स्नेह नहीं; भोग है, यह सुख नहीं—यह मन्दारघर्षण पीड़ित, वासुकी स्वास-निर्गत महा हलाहल है, यह धन्वन्तरिके भाण्डसे निर्गत सुधा नहीं है। समझ गये कि इस हृदय-सागरको मन्थन पर मन्थन कर उन्होंने जो हलाहल निकाला है, वह अपरिहार्य है,... उसे पान करना ही पड़ेगा—नीलकंठकी तरह गोविन्दलालने भी उस विषका पान किया। नीलकंठके विषकी तरह यह विष भी गोविन्दलालके कण्ठमें जैसा लगा रहा। वह विष पुराना होनेका नहीं—वह विष उद्शीर्ण होनेका नहीं। लेकिन वह पहलेका चला हुआ स्वादिष्ट विशुद्ध भ्रमर—प्रणय—सुधा—स्वर्गीय गन्धयुक्त, चित्त पुष्टिकर सर्वरोग हर औषधिके रूपमें रात-दिन स्मृति पट पर नाचने लगा। जिस समय प्रसादपुर रोहिणीके संगीत—स्रोतमें डूबा हुआ था, उस समय भी भ्रमर उनके चित्तमें

प्रबल प्रतापयुक्त अधीश्वरीकी तरह हृदयमें थी, रोहिणी बाहर थी। उस समय भ्रमर अप्राप्यनीया, रोहिणी अत्याज्या थी,—लेकिन उस समय भी भ्रमर अन्दर, रोहिणी बाहर थी। इसी कारण रोहिणी इतनी जल्दी मरी। यदि कोई इस बातको न समझ सके—तो मेरा यह आख्यायिका लिखना व्यर्थ है।

कभी-कभी गोविन्दलाल रोहिणीकी यथाविहित व्यवस्था कर स्नेहमयी भ्रमरके पास हाथ जोड़ कर खड़े होते कहते कि "मुझे क्षमा करो, मुझे फिर अपने हृदयमें स्थान दो।" यदि कहते—"मुझमें इतना गुण नहीं कि तुम्हें क्षमा कर सकूं, लेकिन तुममें तो अनेक गुण हैं, तुम अपने गुणोंसे मुझे क्षमा कर दे।" शायद ऐसा होनेसे भ्रमर इन्हें क्षमा कर देती। क्योंकि रमणी क्षमामयी, दया-मयी, स्नेहमयी होती है —स्त्रियां ईश्वरकी कीर्त्तिकी चरमोत्कर्ष हैं; भगवानकी छाया हैं, पुरुष भगवानके सृष्टि मात्र। स्त्री आलोक है—पुरुष छाया। आलोक कभी छायाका त्याग कर सकती है ?

लेकिन गोविन्दलाल वह सब कर न सके। शायद अहंकार-वश-पुरुष अभिमानसे भरे होते हैं। कुछ लज्जा--दुष्कृत कारियोंका दण्ड लज्जा है। कुछ भय—पाप सहज ही पुण्यके सन्मुख जा नहीं सकता। भ्रमरके सामने मुंह दिखाने लायक न रहे। गोवि-न्दलाल अधिक आगे बढ़ नहीं सके उसपर गोविन्दलाल खूनी। उस समय तो गोविन्दलालकी रही-सही आशा भी जाती रही। अन्धेरा उजालेका सामना न कर सका।

यह सब होने पर भी पुनः प्रज्ज्वलित दूबका दाहकारी भ्रमरके

दर्शनकी लालसा, वर्ष-वर्षमें, मास-मासमें, दिन-दिनमें, दण्ड-दण्ड, पल-पल गोविन्दलालको जलाने लगी। किसने ऐसा पाया है? किसने इस तरह खोया है? भ्रमरने भी तकलीफ पायी, गोविन्द-लालने भी कष्ट पाया। लेकिन गोविन्दलालकी तुलनामें भ्रमर सुखी थी। गोविन्दलालका दुःख मनुष्यदेहके लिये असह्य था। भ्रमरके सहायक भी थे। गोविन्दलालको वह भी सहाय न थे।

फिर रात समाप्त हुई—फिर सूर्यालोकसे जगत् हंस उठा। गोवि-न्दलाल घरके बाहर निकले। रोहिणीका खून गोविन्दलालने अपने हाथसे किया था—भ्रमरका खून भी उन्होंने अपने हाथसे किया था। इसलिये सोचते-सोचते वह बाहर निकले।

हम नहीं जानते कि वह रात गोविन्दलालने कैसे काटकर बिताई थी। शायद रात भयानक रूपमें दुःखदायी ही रही। दरवाजा खोलते ही उनकी मुलाकात माधवीनाथसे हुई। माधवीनाथ गोवि-न्दलालका चेहरा देखते रह गये। वह चेहरा भयानक रोगीका था—उस पर भयानक रोगकी छाया पड़ चुकी थी।

माधवीनाथने उनसे बात न की। मन-ही-मन उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस जनममें वह गोविन्दलालसे भाषण न करेंगे। बिना बोले ही माधवीनाथ लौटकर चले गये।

गोविन्दलाल घरसे निकल कर भ्रमरके शयनकक्षके नीचेके उस उद्यानमें गये। यामिनीने सच कहा था कि उस बागमें फूल नहीं है। समूचा बगीचा घास-फूस और सूखे तृणमें परिवर्तित हो

गया था। दो-एक अमर वृक्ष आज भी अधमरेके समान खड़े थे। लेकिन इसमें फूल न थे। गोविन्दलाल बहुत देर तक उस जंगलमें घूमते रहे। बहुत देर हुई। धूपकी तेजी बहुत बढ़ गई। गोविन्द-लाल घूमते-घूमते अन्तमें थककर वहांसे निकले।

वहांसे निकल कर गोविन्दलाल किसीसे न बोलकर, और कहीं न जाकर उस वारुणी पुष्करिणी तटपर गये। दोपहर हो चली थी। तेज धूपके कारण वारुणीका कृष्णजल तप रहा था। स्त्री-पुरुष अनेक लोग घाटपर स्नान कर रहे थे। लड़के जलमें तैर रहे थे। गोविन्दलालको वह भीड़ भली जान न पड़ी। वारुणी घाटसे जिधर नन्दनतुल्य पुष्पोद्यान था, गोविन्दलाल वहां गये। पहले ही उन्होंने देखा—रेलिंग टूट गयी है--लौह निर्मित विचित्र द्वारकी जगह बांस का टट्टर लगा हुआ था। भ्रमरने गोविन्दलालकी सारी सम्पत्ति बड़े यत्नसे रक्षा की थी, लेकिन उसने इस उद्यानकी तरफ बिलकुल ध्यान दिया न था। एक यामिनीने इस उद्यानकी बात कही थी, जिसपर भ्रमरने कहा था--"मैं तो यमके घर चली--मेरा यह नन्दन-कानन ध्वंस हो। दीदी! पृथ्वीपर मेरे लिये जो स्वर्ग था, उसे किसके लिये छोड़ जाऊं?"

गोविन्दलालने देखा कि फाटक नहीं है—रोलिंग टूट गयी है। प्रवेश कर देखा, फूलके वृक्ष नहीं है। केवल मदार, 'कच्चू और घेंटू' के फूलके पेड़ोंसे बगीचा भरा हुआ है। लतामण्डप सूख-टूट-कर गिर पड़े हैं। आदमकद पत्थरकी मूर्त्तियां भी दो-तीन टुकड़ोंमें टूटकर जमीनपर गिरी हुई हैं। उनपर लताओंका झंखाड़ जमा है।

कुछ टूटी हुई हो खड़ी हैं। प्रमोद भवनकी छत गिर पड़ी है। कमरे में लगे मर्मर-पत्थर कोई उखाड़ ले गया है। उस बागमें न तो अब फूल फूलते हैं; न फल लगते हैं— शायद वह मृदुल वायु भी अब नहीं बहती।

एक टूटी हुई मूर्त्तिके पैरोंके पास गोविन्दलाल बैठ गये। क्रमशः दोपहर हो गयी, लेकिन गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे। प्रचण्ड धूपके कारण उनका माथा लाल हो गया। लेकिन गोविन्दलालने इसका कुछ भी अनुभव नहीं किया। उनके प्राण छटपटा रहे थे। रात भर सिर्फ भ्रमर और रोहिणीका ध्यान करते रह गये थे। एक बार भ्रमर फिर रोहिणी, फिर भ्रमर फिर रोहिणी। सोचते-सोचते मानों वह आंखोंसे भ्रमरको देखने लगे। फिर रोहिणीको भी देखने लगे- जगत् भ्रमर-रोहिणी मय हो उठा। उस उद्यानमें बैठकर वह हर वृक्षको भ्रमरका अनुमान करने लगे। देखने लगे कि हर पेड़की छायामें रोहिणी बैठी है। वह भ्रमर बैठी है—अब नहीं हैं, वह रोहिणी खड़ी है—अब गायब। इन शब्दको भ्रमर और रोहिणीकी आवाज समझने लगे। घाटपर स्नान करनेवाले आपसमें बातें कर रहे थे, गोविन्दलालको ज्ञान पड़ा कि कभी भ्रमर बोलती है, कभी रोहिणी बोलती है—कभी दोनों एक साथ आपसमें बातें करती हैं। सूखे पत्ते खड़के—मालूम हुआ कि भ्रमर आ रही है। बागमें जंगली कीड़े दौड़ते हैं—ज्ञान पड़ता है, रोहिणी भाग रही है। हवासे शाखायें हिलती हैं—मानो भ्रमर श्वास ले रही है। कोयलकी आवाज रोहिणीकी गायनकी आवाज ज्ञान पड़ने लगी। जगत् भ्रमर-रोहिणीमय हो गया।

समय दो-तीन बजेका हो गया, गोविन्दलाल वहीं बैठे हुए भ्रमर–रोहिणीमय जगत्में निमग्न रहे। तीसरा प्रहर हुआ—अनाहारी गोविन्दलाल वैसे ही बैठे हुए भ्रमर–रोहिणी मय जगत्में विचर रहे हैं। सन्ध्या हुई, लेकिन वही हाल। गोविन्दलाल न उठे, न उन्हें चैतन्य हुआ। उनके घरके अन्य लोगोंने सोचा, गोविन्दलाल कलकत्ते चले गये, इसलिये और भी खोज-खबर न ली गयी। बागमें अन्धेरा हो गया—आकाशमें तारे आ गये। पृथ्वी निस्तब्ध हो गयी। गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे।

एकाएक उस अन्धकारमें; अकेले सन्नाटेमें गोविन्दलालके उन्मादग्रस्त चित्तमें विकार पैदा हुआ। उन्होंने स्पष्ट रूपमें रोहिणी की आवाज सुनी। रोहिणी ऊंचे स्वरमें मानों कह रही है--

"यहां।"

गोविन्दलालको अब स्मरण न रहा कि रोहिणी मर चुकी है। उन्होंने पूछा,—"यहां क्या?"

फिर सुना रोहिणी बोली,—

"ऐसे ही समयमें!"

गोविन्दलालने पूछा,--"यहां, ऐसे ही समयमें क्या रोहिणी?"

मानसिक-व्याधिग्रस्त गोविन्दलालने सुना, फिर रोहिणीने जवाब दिया,—

"यहीं, इसी समयमें, इसी जलमें,

"मैं डूबी थी !"

गोविन्दलालने अपने ही मानसोद्भूत यह आवाज सुनकर पूछा,—"मैं डूबूं ?" उन्होंने फिर व्याधिजनित उत्तर सुन पाया—

"हां, आओ ! स्वर्गमें बैठी भ्रमरने बुलवा भेजा। वह अपने पुण्यबलसे लोगोंका उद्धार करेगी।

"प्रायश्चित्त करो; मरो।"

गोविन्दलालने आंखें बन्द कर लीं। उनका शरीर अब सन्न हो गया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

उन्होंने मुग्धावस्थामें अन्तर्चक्षुसे देखा, सहसा रोहिणी-मूर्त्ति अन्धकारमें गायब हो गयी। तब दिग-दिगन्तको प्रतिभासित करती हुई ज्योतिर्मयी भ्रमर मूर्त्ति उदित हुई।

भ्रमर मूर्त्तिने कहा—"क्यों मरोगे ? मरना नहीं। हमें खोया है, इसलिये मरोगे ? मेरी अपेक्षा भी कोई प्रिय है। बचे रहनेसे उसे पाओगे।"

उस रात गोविन्दलाल मूर्च्छित अवस्थामें वहीं पड़े रहे। सवेरे पता पानेपर उनके नौकर आदि उन्हें घरमें उठाकर ले गये। उनकी दुरवस्था देखकर माधवीनाथको भी रहम आयी। सब लोगोंने मिल-कर उनकी चिकित्सा करायी ! सभी लोग प्रत्याशा करने लगे थे कि अब वे घरमें रहेंगे। किन्तु गोविन्दलालने यह न किया। एक रात वे किसीसे कुछ न बोलकर कहीं चले गये। किसीने फिर उनकी कोई खबर न पायी।

सात वर्षों के बाद उनका श्राद्ध हुआ।

—:o:—

परिशिष्ट

गोविन्दलालकी समूची सम्पत्ति उनके भांजे शचीकान्तको मिली। शचीकान्त बालक नहीं, वयोप्राप्त युवक हैं।

शचीकान्त नित्य उस जंगलमें—जहां पहले गोविन्दलालका प्रमोद-उद्यान था, घूमनेके लिये जाते हैं। वह स्थान इस समय निविड़ जंगल है।

शचीकान्त जब वहां घूमने जाते हैं, तो उनकी स्मृतिपर समूची घटना चित्रपटकी तरह अंकित होने लगती है। इससे उनके हृदयको बड़ा दुःख होता है। शचीकान्तने सोचा कि अपने मामा-मामी, गोविन्दलाल और भ्रमरकी स्मृतिमें, उनका यह प्रिय प्रमोद-उद्यान पुनः हरा-भरा कर दिया जाय।

इच्छानुसार कार्य शुरू हो गया; जहां, जो वृक्ष, लता, फूल, मूर्त्ति आदि थे, वहां वैसे ही फिर लगने और बनने लगा। किन्तु इसमें थोड़ी शचीकान्तकी भी रुचि मिल गयी। रंगीन देशी पुष्प-वृक्षोंकी जगह साइप्रस, लिली आदि विलायती पुष्पवृक्ष लहराने लगे। जिस जगह प्रमोदभवन था, वहां शचीकान्तने एक मन्दिरका निर्माण कराया। लेकिन उस मन्दिरमें कोई देवी-देवताकी मूर्त्ति स्थापित नहीं हुई। बड़े ही अर्थ-व्ययसे शचीकान्तने अपनी मामी

भ्रमरकी एक स्वर्ण मूर्त्ति तैयार कराई। वही मूर्त्ति उस मन्दिरमें बैठाई गयी।

भ्रमरकी मृत्युके बारह वर्ष बाद उस मन्दिरके दरवाजेपर एक दिन एक संन्यासी आ उपस्थित हुआ। शचीकान्त भी उस समय वहीं थे। संन्यासीने उनसे कहा,—"इस मन्दिरमें क्या है, मैं देखना चाहता हूं।"

शचीकान्त दरवाजा खोलकर स्वर्णमयी भ्रमर मूर्त्ति दिखाई। संन्यासीने कहा,—"यह भ्रमर मेरी थी। मैं गोविन्दलाल राय हूं।

शचीकान्त विस्मित और स्तम्भित हुए। उसके मुंहसे बात न निकली। लेकिन इसके बाद ही उनका विस्मय दूर हो गया। उन्होंने गोविन्दलालकी पदधूलि ग्रहण की। इसके बाद उन्होंने चाहा, कि गोविन्दलालको घर ले जायं। लेकिन गोविन्दलालने इसे अस्वीकार कर कहा—"आज मेरा बारह वर्षका अज्ञातवास पूरा हुआ। अज्ञातवास समाप्त कर तुम्हें आशीर्वाद देनेके लिये आया हूं। आशीर्वाद दे चुका; अब लौट जाऊंगा।"

शचीकान्तने हाथ जोड़कर कहा,—सम्पत्ति आपकी है आप ही इसका उपभोग करें।"

गोविन्दलालने कहा,—"नहीं। विषय-सम्पत्तिसे भी अधिक बड़ा धन, जो कुवेरके लिये भी अप्राप्य है, मैंने उसे प्राप्त किया इस भ्रमरकी अपेक्षा भी जो मधुर है, भ्रमरकी अपेक्षा भी पवित्र, मैंने उसे प्राप्त किया है। मैंने शांति प्राप्त की है। धनकी मुझे जरूरत नहीं उसे तुम भोगो।"

शचीकान्तने विनीत भावसे कहा—"संन्याससे क्या शान्ति प्राप्त होती है ?"

गोविन्दलालने उत्तर दिया,—"कभी नहीं। केवल अज्ञातवासके लिये मेरा यह संन्यासी स्वरूप है। भगवत् चरणोंमें मन लगानेके अतिरिक्त शान्ति-प्राप्तिका दूसरा मार्ग नहीं है। इस समय भगवान् ही मेरी वह सम्पत्ति है। वही मेरे भ्रमर हैं—भ्रमरसे भी अधिक बढ़कर हैं।"

यह कहकर गोविन्दलाल चले गये। फिर उन्हें किसीने भी हरिद्राग्राममें न देखा।

समाप्त